VISHVA–JYOTI R. N. NO. 1/57 ISSN 0505-7523
REGD. NO. PB-HSP-01
CURRENCY PERIOD: (1.1.2012 TO 31.12.2014)

६३, ८

नवम्बर–2014

विश्वज्योति

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर

एक प्रति का मूल्य : १० रुपये

संस्थापक–सम्पादक :

स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु

सम्पादकः

प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल

(सञ्चालक)

आदरी सह-सम्पादक :

प्रो. त्रिलोचनसिंह बिन्द्रा

उप–सम्पादक :

डॉ. देवराज शर्मा

परामर्शक–मण्डल :

डॉ. दर्शनसिंह निर्वैर
होश्यारपुर

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द
चण्डीगढ़

डॉ. जगदीशप्रसाद सेमवाल
होश्यारपुर

डॉ. (सुश्री) रेणू कपिला
पटियाला

शुल्क की दरें

आजीवन (भारत में)	:	१२०० रु.	आजीवन (विदेश में)	:	३०० डालर
वार्षिक (भारत में)	:	१०० रु.	वार्षिक (विदेश में)	:	३० डालर
सामान्य अङ्क (भारत में)	:	१० रु.	सामान्य अङ्क (विदेश में)	:	३ डालर
विशेषाङ्क (एक भाग भारत में)	:	२५ रु.	विशेषाङ्क (एक भाग विदेश में)	:	६ डालर

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम,
होश्यारपुर–146 021 (पंजाब, भारत)

दूरभाष : कार्यालय : 01882-223581, 223582, 223606
सञ्चालक (निवास) : 01882-224750, प्रैस : 231353

E-mail : vvr_institute@yahoo.co.in
Website : www.vvrinstitute.com

विषय-सूची

लेखक	विषय	विधा	पृष्ठांक
डॉ. राजमङ्गल यादव	औपनिषदिक-शिक्षा की सार्वकालिकता	लेख	2
डॉ. किशनाराम बिश्नोई	पर्यावरण का पर्याय : खेजड़ली खड़ाणा	लेख	5
डॉ. त्रिलोचन सिंह बिन्द्रा	भगवद्गीता का सदाचार	लेख	9
महात्मा चैतन्यमुनि	संस्कारों का साक्षात्कार एवं पुनर्जन्म	लेख	14
डॉ. राजकुमार महाजन	महाकवि अश्वघोष की रस-अभिव्यञ्जना के द्योतक उपमान	लेख	18
प्रिं. उमेश चन्द्र शर्मा	स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु (अतीत की यादों के झरोखों से)	लेख	21
डॉ. महेश सिंह यादव	सन्त साहित्य के विकास में सन्त मलूकदास का योगदान	लेख	25
डॉ. रीना तलवाड़	महात्मा गाँधी : एक महान् सन्त	लेख	27
डॉ. कर्मबीर सिंह सिहाग	स्त्री-शिक्षा के प्रति महर्षि दयानन्द का दृष्टिकोण	लेख	30
वैद्य श्री गजानन्द व्यास आयुर्वेदाचार्य	यज्ञ द्वारा समस्त रोगों का उपचार	लेख	32
श्री कमलेश कुमार	चरकसंहिता में मीमांसा-दर्शन का व्यावहारिक स्वरूप	लेख	36
	संस्थान-समाचार		38
	विविध-समाचार		40
	पुण्य-पृष्ठ		41-42
	द्वितीयसंस्कृतायोगः - 2014		43-52

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् ॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ६३ होश्यारपुर, कार्तिक २०७१; नवम्बर २०१४ संख्या ८

सिंहे व्याघ्र उत या पृदाकौ,
त्विषिरग्नौ ब्राह्मणे सूर्ये या।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान,
सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥
(अथर्ववेद, 6. 38. 1)

सिंह में, व्याघ्र में, (पृदाकौ) सांप में, अग्नि में, ब्राह्मण में, सूर्य में जिस (स्वाभाविक शक्ति का) (त्विषि) प्रकाश हो रहा है (वही मेरे अन्दर भी हो)। जिस (स्वाभाविक शक्तिरूपिणी) देवी भगवती ने इन्द्र (तक) को (जजान) प्रकट कर रखा है वह (वर्चसा) तेज पुंज को (संविदाना) साथ लिए (नः) हमें भी (ऐतु) आकर कृतार्थ करे।

(वेदसार-विश्वबन्धुः)

औपनिषदिक-शिक्षा की सार्वकालिकता

– डॉ. राजमङ्गल यादव

वेद का अन्तिम भाग होने तथा उनके सारभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादक होने के कारण ही उपनिषद् 'वेदान्त' के नाम से विख्यात हैं। उपनिषद् वह आध्यात्मिक सरोवर है, जिसमें अवगाहन कर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। वैदिकधर्म की मूलतत्व-प्रतिपादिका प्रस्थानत्रयी में मुख्य उपनिषद् ही हैं। उपनिषद् मुख्यतया ब्रह्मविद्या का द्योतक है, क्योंकि इस विद्या के अनुशीलन से मुमुक्षुजनों की संसार-बीजभूता अविद्या नष्ट हो जाती है। अत: सद् धातु का विशरण अर्थ सार्थक प्रतीत होता है। उपनिषद्-विद्या ब्रह्म की प्राप्ति करा देती है। अत: सद् धातु का गत्यर्थक रूप सार्थक होता है तथा मनुष्य के गर्भ आदि दु:ख सर्वथा शिथिल हो जाते हैं, अत: सद्धातु का अवसादन अर्थ सार्थक हो जाता है।

यद्यपि उपनिषदों की संख्या के सन्दर्भ में पर्याप्त मतभेद देखने को मिलता है तथापि मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार उपनिषदों की संख्या 108 है तथा इनमें 10 उपनिषद् प्रमुख हैं।[1] उपनिषदों में ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के निमित्त मानव को जिस नैतिक-शिक्षा का ज्ञान उपनिषदें कराती हैं उतना अन्य शास्त्रों में अपेक्षित नहीं दिखाई देता। उपनिषदों से शिक्षा-दर्शन का ज्ञान प्राप्त कर मनुष्य इहलोक में माङ्गलिक-कृत्य करता हुआ परलोक का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। अत: उपनिषदें सर्वप्रथम मनुष्य को इहलोक में उसके आचार-विचार और सद्व्यवहार को सुधारने का निर्देश देती हैं।

जिन सेवितव्य कर्मों को करने का निर्देश उपनिषदें प्रदान करती हैं, वे मुख्यत: अधोलिखित हैं- (1) धर्म का आदर करना, (2) तपश्चर्या (3) शान्ति सद्भावना, (4) अतिथि-सत्कार करना, (5) स्वाध्याय के प्रति प्रमाद न करना (स्वाध्यायान् मा प्रमद:), (6) आत्मानुशासन, (7) चरित्र-निर्माण, (8) सन्तानोत्पत्ति, (9) सत्यभाषण, (10) संयम, (11) नित्य-नैमित्तिक अग्निहोत्र, (12) आचार्यवन्दना, (13) मानवता का निर्वहन तथा अध्यापन आदि।

कठोपनिषद् में नचिकेता अपने पिता वाजश्रवस को सदाचरण की शिक्षा को अपनाने के उद्देश्य से सम्बोधित करते हुए कहता है-

पिता जी! पूर्व पुरुष जैसा आचरण किया करते थे, उसको भली-भाँति देखिये एवं अन्य (वर्तमानकालिक) पुरुष जैसा आचरण करते हैं, उसे (भी) देखिये। मनुष्य खेती (फसल) की तरह पकता (वृद्ध होकर मर जाता) है, और खेती की तरह ही पुन: उत्पन्न हो जाता है।[2] भगवान् श्रीकृष्ण गीता के तीसरे अध्याय में इसी ओर इंगित करते हैं।[3]

1. मुक्तिकोपनिषद्। 2. कठोपनिषद्, 1. 1. 6. 3. गीता, 3. 21.

इस प्रकार गीता और उपनिषद् एक स्वर में कहते हैं कि श्रेष्ठ पुरुषों (आप्तपुरुषों) के द्वारा निर्देशित मार्ग पर औचित्यपूर्वक चलना चाहिए; परन्तु वर्तमान युग में मानवजीवन में अधिकांशतः इसका अभाव देखने को मिलता है, जिसके कारण लोगों में लोगों के प्रति श्रद्धा नहीं है आतिथ्य नहीं है केवल वैमनस्य ही विद्यमान है, जो उसकी आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार की उन्नतियों भी बाधक है। जो लोग इन उपनिषदों की शिक्षा का अनुवर्तन करने वाले हैं, उनमें भी कुछेक ही पूर्णतः अपने जीवन में इस शिक्षा को आदर्शरूप से अवतरित कर पाते हैं। उपनिषदों के ये वाक्य भारत की प्राचीन-आचार-संहिता (Code of Conduct) के मूलभूत आधार हैं, परन्तु मानव-समाज आज इन पर अमल न कर विचलित हो रहा है।

अतिथिसेवा का फल तथा न करने के प्रायश्चित्त का भी वर्णन कठोपनिषद् के प्रथम अध्याय की प्रथमवल्ली में प्राप्त होता है।[4] वहाँ स्पष्ट लिखा है कि अतिथि अग्नि के रूप में घरों में प्रवेश करता है। उसकी अर्घ्यपाद्यादि दान रूप शान्ति सत्पुरुषों द्वारा की जाती है। हे वैवस्वत! आप भी जल ले जाइये तथा अतिथि का सत्कार कीजिए। क्योंकि जिसके घर में ब्राह्मण-अतिथि बिना भोजन किये निवास करता है, उस मन्द-बुद्धि पुरुष की आशा (अज्ञात पदार्थों की प्राप्ति की कामना) एवं प्रतीक्षा (ज्ञात पदार्थों की प्राप्ति की कामना) तथा उनके संयोग से प्राप्त होने वाले फल अथवा अच्छी सङ्गति का फल, सत्य और प्रिय वाणी, इष्ट (यागादि जन्य फल) एवं पूर्त (कूप-निर्माण आदि सार्वजनिक हित-कार्यों से उत्पन्न फल) तथा समस्त पुत्र और पशुओं को (वह) नष्ट कर देता है।[5]

अतः उपनिषदों द्वारा बतलाये गये श्रेष्ठ कर्मों (अग्निहोत्र, सत्याचरण एवं अतिथिपूजन आदि) के प्रति श्रद्धा का होना परमावश्यक है। बिना श्रद्धा के मनुष्य की प्रवृत्ति इन श्रेष्ठ कर्मों के प्रति कदापि नहीं हो सकती। श्रद्धा का स्थान व्यक्ति के हृदय में है। शाकल्य के प्रश्न का उत्तर देते हुए बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य कहते हैं कि ''व्यक्ति-हृदय ही श्रद्धा को जानता है, क्योंकि श्रद्धा हृदय में प्रतिष्ठित होती है।''[6] इसलिए उपनिषदों का कथन है कि- **श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।** जो लोग इस संसार में दंभ एवं अभिमान से भरे हुए हैं। मूर्ख होते हुए भी स्वयं को सर्वज्ञ और पण्डित मानने वाले हैं, उनके अधोमार्गगमन का निर्देश करते हुए कठोपनिषद् और मुण्डकोपनिषद् का एक स्वर में कथन है- अविद्या (अज्ञान) भीतर रहने वाले, अपने आप को बुद्धिमान् (महापण्डित और दानी) मानने वाले मूढ पुरुष निरन्तर कुटिल (टेढ़े-मेढ़े) मार्गों से चलते हुए वैसे ही हम संसार-सागर में भटकते रहते हैं जैसे अन्धे के द्वारा नीयमान अन्धा।[7] अतः उपनिषदों की शिक्षा प्राचीनकाल में उपादेय थी, वर्तमान काल में उपादेय है तथा भविष्यकाल में

---

4. कठोपनिषद्, 1. 1. 7.
5. कठोपनिषद्, 1. 1. 8.
6. बृहदारण्यकोपनिषद्, 3. 9. 21.
7. कठोपनिषद्, 1. 2. 5. तथा मुण्डकोपनिषद्, 1. 2. 8.

भी इसकी उपादेयता में किसी भी प्रकार से न्यूनता की सम्भावना लेशमात्र भी नहीं। इसीलिए हे मनुष्यो! उपनिषदों की शिक्षा का अनुवर्तक बनो। उपनिषदें मानव-कल्याण के निमित्त दो विद्याओं का निर्देश करती हैं - परा और अपरा। परा विद्या है और अपरा अविद्या है। परा से तात्पर्य ब्रह्मज्ञान से है तथा अपरा से लौकिकज्ञान की सिद्धि प्राप्त होती है।

इसी बात को मुण्डकोपनिषद् भी प्रमाणित करती है। शौनक के प्रश्नों का उत्तर देते हुए अङ्गिरा ऋषि कहते हैं- दो विद्याएँ बतलायी गयी हैं- परा और अपरा। इन दोनों विद्याओं में चारों वेदों-ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद का ज्ञान एवं छः शास्त्रों (शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त छन्द और ज्योतिष) का ज्ञान अपरा विद्या के अन्तर्गत आता है। इसके द्वारा व्यक्ति लोक में लोकमङ्गल कृत्यों को करता हुआ लोकोन्नति अर्थात् आधिभौतिक उन्नति करता है। अग्निहोत्र कर्म वेदों द्वारा बतलाया गया प्रशंसित कर्म है, इसके द्वारा व्यक्ति आधिदैविक उन्नति करता है तथा इन दोनों प्रकार की उन्नति-सम्पन्न व्यक्ति तृतीय प्रकार की आध्यात्मिक उन्नति को स्वतः सिद्ध कर लेता है अर्थात् परलोक का ज्ञान स्वतः सिद्ध हो जाता है जिससे पराविद्या का ज्ञान हो जाता है।

श्रौत एवं स्मार्त-कर्म ही शुभकर्म हैं। ये ही मनुष्य को पुरुषार्थी एवं पुरुषार्थ की प्राप्ति कराते हैं। इन करणीय कर्मों की अवश्यकर्तव्यता के विषय में तैत्तिरीयोपनिषद् में विस्तार से कहा गया है (तैउ. 1.9.1.)। मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि सत्य ही जय को प्राप्त होता है, मिथ्या नहीं। सत्य से देवयान मार्ग का विस्तार होता है, जिसके द्वारा आप्तकाम ऋषि-लोग उस पद को प्राप्त होते हैं। जहाँ वह सत्य का परम निधान (भण्डार) वर्तमान है। अतः सत्य की प्रतिष्ठा समस्त मनुष्यों को सर्वदा करनी चाहिए।[8] तैत्तिरीयोपनिषद् में शिष्य को वेदाध्ययन के अनन्तर जिस नैतिक शिक्षा का उपदेश आचार्य द्वारा दिया गया है वह किसी काल में प्रतिबाधित होने वाला नहीं है। यह सृष्टि का शाश्वत सत्य है। यदि मनुष्य अपनी उन्नति एवं समस्त पुरुषार्थों की प्राप्ति करना चाहता है तो केवल कर्तव्यमार्ग का अनुसरण करके ही प्राप्त कर सकता है अन्य मार्ग से नहीं। इसके विषय में तैत्तिरीयोपनिषद् में विस्तृत रूप से शिक्षा दी गई है। यदि आज उस शिक्षा का अनुसरण किया जाय तो न केवल व्यक्ति अपितु सारा समाज सुखी हो जाय और आनन्द प्राप्ति का अनुभव करने लगे।[9] इस प्रकार इस उपनिषद् में परा और अपरा विद्याओं तथा समस्त श्रेष्ठ कर्मों का समाहार हो जाता है जिससे लोक-परलोक-मङ्गल सम्भव है।

– संस्कृत विभाग, रामजस कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

8. मुण्डकोपनिषद्, 3. 1. 6.
9. तैत्तिरीयोपनिषद्, 1.11.1-4.

पर्यावरण का पर्याय : खेजड़ली खड़ाणा

– डॉ. किशनाराम बिश्नोई

बिश्नोई–समाज में धार्मिक–संस्कार व सामाजिक रीति–रिवाजों में यद्यपि अन्य मतावलम्बियों के समान ही परम्परा से वृक्षों की मान्यता प्राचीनकाल से ही चली आ रही है पर विशेषकर उनमें खेजड़ी वृक्ष की अत्यधिक उपयोगिता है। राजस्थान के मरू–प्रदेश की तुलसी कही जाने वाली खेजड़ी जो आज भी सुरक्षित है, उसका श्रेय उन शहीदों को जाता है जिन्होंने गुरु जम्भेश्वर की पर्यावरणीय शिक्षा से प्रेरित होकर इसकी रक्षा के लिये अपने प्राण तक त्याग दिये थे। गुरु जम्भेश्वर जी ने अपनी वाणी व उपदेशों में जीवरक्षा तथा पर्यावरण–रक्षा पर अत्यधिक बल बार–बार दिया है। उनकी उन्नतीस नियमों की आचार–संहिता में आचार–दर्शन को ही पर्यावरण का प्रतीक माना है। प्राचीन यज्ञ–परम्परा को वे पर्यावरणीय और आध्यात्मिक दोनों रूपों में मान्यता देते हैं। गुरु जम्भेश्वर जी ने अपने व्यापक भ्रमण के दौरान जगह–जगह खेजड़ी के वृक्ष ही नहीं लगाये बल्कि राजस्थान के नागौर जिले की जायल तहसील के रोटू गाँव में तो खेजड़ियों का एक विशाल बगीचा भी लगा दिया था। यहाँ भगवान् जम्भेश्वर अपनी प्रिय शिष्या श्रीमती उमा देवी (अपरनाम नौरंगीदेवी) का भात भरने के लिए रोटू गाँव पधारे थे। यहीं पर उन्होंने खेजड़ी के वृक्षों का एक विशाल अभयारण्य लगा दिया। जो आज भी वहाँ विद्यमान है।

गुरु जम्भेश्वर ने उत्तरप्रदेश के लोदीपुर धाम में भी एक खेजड़ी का वृक्ष लगाया था जो बिश्नोई–इतिहास की मूक धरोहर है। राजस्थान का कल्पवृक्ष कहीं जाने वाली खेजड़ी के लिए मरूस्थलीय जलवायु तथा राजस्थानीय तापमान सबसे उपयुक्त है। इस वृक्ष को संस्कृत में ''शम्मी'' कहते हैं तथा अंग्रेजी में इसे Prosopis Cineraria से कहते हैं। इसके अतिरिक्त प्रान्तीय भाषाओं में भी इसे अलग–अलग देशज नामों से पुकारते हैं। हरियाणा की देशज भाषा में इसे ''जाँडी'' कहते हैं। भारत के अतिरिक्त यह वृक्ष खाड़ी देशों में भी पाया जाता है। हिन्दू धर्म–ग्रन्थों में इसे पूजनीय माना जाता है। हिन्दूलोग इसे धार्मिक दृष्टि से देखते हैं। इस वृक्ष से अनेक बहुमूल्य औषधियां बनाई जाती हैं। इसके जो फल लगता है उसे मारवाड़ी भाषा में साँगरी कहते हैं, जिसकी सब्जी अत्यन्त ही स्वादिष्ट बनती है। महिलाओं के प्रसव के उपरान्त साँगरी की सब्जी देना सबसे उपयुक्त माना गया है। परन्तु ध्यान देने

की बात यह है कि बिश्नोई-धर्म और संस्कार व सामाजिक परम्पराएँ इसकी उपस्थिति में ही सम्पन्न होती हैं। इसलिए बिश्नोई-पंथ के लोगों का इसके प्रति विशेष लगाव है तथा साथ ही धर्म के संदर्भ में इसके प्रति अत्यधिक निष्ठा और आस्था है। यह वृक्ष बिश्नोई लोगों का धर्म-वृक्ष है। इस वृक्ष की रक्षा करते हुए अनेक बिश्नोई लोगों ने अपने प्राणों तक का बलिदान दिया है।

बिश्नोई साहित्य के इतिहास में खेजड़ी वृक्ष की रक्षा की अनेक बलिदान-गाथाएं हैं। जिनका वर्णन जाम्भाणी साखियों, हस्तलिखित ग्रंथों, पट्टों-परवानों, ख्यातों और अन्य जाम्भाणी आख्यान-काव्यों में मिलता है। मरुस्थल में अकाल के समय जानवर इस वृक्ष को खाकर अपनी उदर-पूर्ति करते हैं। मरूस्थल में रेगिस्तान के प्रसार को रोकने व भूमि का संरक्षण करने में इस वृक्ष की अत्यधिक उपयोगिता दृष्टिगोचर होती है। वैसे तो रेगिस्तान के प्रसार को रोकने के लिए अन्य मरूस्थलीय पेड़-पौधे भी उपयोगी होते हैं, परन्तु इनमें खेजड़ी के पेड़ों की उपयोगिता अलग से है। इस वृक्ष की रक्षा करते हुए बिश्नोई-सम्प्रदाय के अनेक स्त्री-पुरुषों ने जो अपने बलिदान दिये हैं, उनका विवरण कालक्रमानुसार देने का प्रयास नीचे किया जायेगा।

खेजड़ी वृक्ष रक्षार्थ सबसे प्रथम बलिदान राजस्थान के जोधपुर जिले के गाँव सामासड़ी की दो बिश्नोई महिलाएँ करमा और गोराबाई ने सन् 1604 में दिया था। सामासड़ी गाँव के एकदंम बीचोंबीच चौराहे पर शनिवार के दिन इन दोनों बहिनों ने खेजड़ी के वृक्षों की रक्षा करते हुए स्वैच्छा से प्रतिक्रियास्वरूप अपने प्राणों का बलिदान दिया। जाम्भाणी साखी में वील्होजी महाराज ने इस बात का उल्लेख प्रामाणिक रूप से किया है-

''करमां खड़ी छै खेजड़ियाँ काज,
रैवासड़ी के चौहटे।
सम्मत सौलासी संसार,
सय मझ और इकसठे॥
इकसठे मंझ और जेठ मासे,
कृष्ण पखे थावर दिने।
बीज के दिन कियो पयाणो,
सारियो सूधो मनै॥
निरवाहि नाम न सीख मोटो,
पांव दे बेड़े चढ़ी।
गुरु परसादे वील्ह बोलै,
करमां अरू गौरा खड़ी॥[1]

उनके इस बलिदान के बाद खेजड़ी वृक्ष रक्षार्थ दूसरा बलिदान आरम्भ होता है, यह बलिदान-गाथा राजस्थान के जोधपुर जिले की बिलाड़ा तहसील के तिलवासनी गाँव के पास घटित होती है। इस गाँव के पास एक खेजड़ला गाँव है, जहाँ खेजड़ी वृक्षों की बहुलता है। गाँव में

1. जाम्भाणी साखी संग्रह, स. आचार्य गोरधनदास, पृ. 101.

भाटी-गोत्र के राजपूत ज्यादा रहते थे। गाँव के ठाकुर गोपालदास और किरणादास भाटी थे। इन दोनों भाइयों ने खेजड़ी के वृक्षों को काटना आरम्भ किया तो इस बात का पता तिलवासनी गाँव के बिश्नोईयों को लगा। इसकी सूचना मिलते ही तीन-चार बिश्नोई ''मौट्यार'' खेजड़ला ग्राम आ गये। उन्होंने भाटी को वृक्ष काटने से रोका परन्तु वे माने नहीं और हरे-भरे वृक्ष काटते ही चलते गए। तब प्रतिक्रियास्वरूप बिश्नोई स्त्रियां खींवणी देवी, नैतू नैण व मोटाराम खेखर ने वृक्षों की रक्षार्थ अपने प्राण त्याग दिये। तदुपरान्त वृक्षों की कटाई रोकनी पड़ी। जाम्भाणी साखी में इस घटना का विस्तार से वर्णन किया है।[2]

इस घटना के बाद नागौर जिले के पोलावास गांव में चेत वदि तीज, वि सं. 1700 (सन् 1643 ई.) में वृक्ष-रक्षार्थ व गुरु जम्भेश्वर के पर्यावरणीय धर्म-नियमों का पालन करते हुए एक अद्वितीय घटना घटित हुई। पोलावास गाँव के पास राजोद गाँव है। जहाँ मैड़तियाँ ठाकुर (राजपूत) रहते थे। ठाकुरों को होली जलाने के लिए लकड़ियों की आवश्यकता हुई तो उन्होंने खेजड़ी के हरे-भरे पेड़ों को काटना शुरू कर दिया। जब पोलावास गाँव के बिश्नोइयों को इस बात का पता चला तो वे सब राजोद गाँव में एकत्रित हो गये। उन्होंने पहले अहिंसात्मक दृष्टि से वृक्षों को काटने का विरोध किया। परन्तु ठाकुर सामंतवादी प्रवृत्ति के होने के कारण नहीं माने। ठाकुर विरोध की परवाह किये बिना ही वृक्ष काटते रहे तो वहाँ बूचोजी बिश्नोई ने वृक्षों की रक्षा करते प्रतिक्रिया स्वरूप बलिदान दे दिया। जिसका वर्णन बड़े विस्तार से जाम्भाणी साखी में आया है[3] –

बूचो बारां क्रोडि में, कियो बैकुंठ वास।

ब्रह्म गऊ गुरु खेजड़ी, जै तुलसी ततसार।
रैण ने राजोद मां, दूदे तणी ओलाद।
निगुरो गुरु माने नहीं, बिरछ बढ़ावे कर वाद।
बाढ़ बिरछ होली कीवी, फिर फिर दीठा गोंढ।
आई खबर जमात मां, खोज गया राजोद।

×× ×× ×× ××

सिरै धन आवै सिर सटि, सिर सटि सन्मान।
सिर सटि लाभै स्वर्ग, जै सिर दीन्हो जाय॥

इन छोटी-छोटी घटनाओं के बाद हम आपसे एक ऐसी घटना के विषय में चर्चा करना चाहते हैं जो खेजड़ी के पेड़ों की रक्षार्थ विश्व की अद्वितीय और बेजोड़ एवं बेमिसाल है। यह घटना राजस्थान में जोधपुर जिले के गाँव खेजड़ली में घटित हुई है। खेजड़ी वृक्षों की अत्यधिक मात्रा होने पर इस ग्राम का नाम खेजड़ली पड़ा है। यह गाँव जोधपुर से 21 किलोमीटर दूर उत्तर-पूर्व में

2. जाम्भाणी साखी संग्रह, सं. आचार्य गोरधनदास, पृ. 102-03.
3. जाम्भाणी साखी संग्रह, सं. आचार्य गोरधनदास, पृ. 50-51.

स्थित है। यह घटना तत्कालीन महाराजा अभयसिंह के समय भादो सुदी 10वीं मंगलवार, संवत् 1787 (सन् 1730 ई.) में घटित हुई है तथा लगातार एक साल तक घटित होने के प्रमाण भी मिले हैं। इस घटना के समय महाराजा अभयसिंह गुजरात में युद्धरत थे। उनका पुस्तैनी दीवान गिरधरदास भण्डारी था, जिसने खेजड़ी के वृक्षों को काटने का फरमान जारी किया था। क्योंकि उस समय जोधपुर के किले का निर्माण चल रहा था। चूने के पत्थर को जलाने के लिए लकड़ी की आवश्यकता थी। इसीलिए दीवान गिरधरदास ने बिश्नोईयों के ग्राम खेजड़ली में खेजड़ी के वृक्ष कटवाने शुरू कर दिये। खेजड़ली गाँव में बिश्नोई लोग रहते थे। जहाँ बिश्नोई रहते थे वहाँ पर वन्य-प्राणियों तथा पेड़ों की रक्षा जरूर होती थी।

जब इस घटना की सूचना 84 गाँवों के बिश्नोइयों के पास भिजवाई तो गुड़ा गाँव में एक बिश्नोइयों की महापंचायत हुई। महापंचायत में यह निर्णय हुआ कि खेजड़ी के पेड़ों को काटने नहीं देंगे। जब यह सूचना गिरधरदास भण्डारी के पास भिजवाई तो उसने साफ शब्दों में कह दिया कि पेड़ काटने जारी रहेंगे। तब बिश्नोइयों के प्रतिक्रियास्वरूप एक-एक स्त्री और पुरुष वृक्षों के साथ चिपक गये और एक-एक करके सभी कटने लगे। जिसमें 60 गांवों के 64 गोत्रों के 217 परिवारों के 363 स्त्री-पुरुषों ने अपना बलिदान दे दिया। जिसमें पुरुषों की संख्या 294 और महिलाओं की संख्या 69 थी। 36 दम्पत्तियाँ तो पूरी की पूरी स्वाहा हों गयीं। इस महासमर में सबसे पहले बलिदान देने वाली स्त्री अमृतादेवी बिश्नोई थी।

यही कारण है कि उसी की यादगार में श्रीमती अमृतादेवी के नाम से भारत सरकार ने वन्यजीवों व पेड़ों की रक्षा के संदर्भ में एक पुरस्कार देना आरम्भ किया है। राजस्थान सरकार तो बहुत पहले से ही यह पुरस्कार आरम्भ कर चुकी है। मध्यप्रदेश सरकार ने भी एक पुरस्कार श्रीमती अमृतादेवी के नाम से इसी वर्ष आरम्भ किया है।

– प्रभारी, गुरु जम्भेश्वर धार्मिक अध्ययन संस्थान,
गुरु जम्भेश्वर विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)।

भगवद्गीता का सदाचार

– डॉ. त्रिलोचन सिंह बिन्द्रा

मानव-जीवन की परम सिद्धि उसके सदाचार में ही निहित रहती है। जहाँ विद्वान् और अर्थवान् होने में मानव-जीवन की शोभा है, वहीं सदाचार को भी मानव-जीवन का दूसरा महत्त्वपूर्ण पहलू समझा जाता है। मानव यदि बलवान्, विद्यावान् और अर्थवान् हो, पर वह आचारवान् न हो तो वह जीता हुआ भी मृत के समान ही होता है।

भगवद्गीता के 12वें अध्याय के 13वें श्लोक से लेकर 19वें श्लोक तक में[1] , भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिया है, वह आचरण की दृष्टि से साक्षात् अमृत है। यही सच्ची मानवता का मार्ग है। आचार्य विश्वबन्धु जी ने इन सात श्लोकों का जो सदाचार तथा मानवता सम्बन्धी सार व्यक्त किया है, वह निम्न प्रकार से है–

1. अद्वेष भाव –

सच्चे साधक को अपने मन, वचन और आचरण में से द्वेष-भाव अथवा हिंसा-वृत्ति को निकाल कर उसके स्थान पर अहिंसा-वृत्ति अथवा अद्वेष-भाव को धारण करना चाहिए। ऐसा साधक स्वयं सब प्रकार की हिंसा-वृत्ति को दूर करते हुए, हिंसा-वृत्ति वाले दूसरे लोगों को भी सुधारने का यत्न करता है।

2. मैत्र-भाव –

सभी प्रकार का कर्म, जो मानव-व्यवहार में प्रयुक्त होता है, वह सदा सब व्यक्तियों के प्रति हितकारी होना चाहिए। समाज को सुख देने वाली स्थिति प्रत्येक मानव की भाव-शुद्धि पर और उसकी भाव-शुद्धि उसके आत्मोद्धार पर तथा उसका आत्मोद्धार उसके मित्र-भाव पर आश्रित रहता है।

3. अहंता और ममता का अभाव –

मानव का उत्तम संरक्षण, पोषण और सांस्कृतिक विकास इस बात पर निर्भर करता है कि वह कितना अधिक अपनी अहंता अथवा अहंभाव और ममता को व्यक्तिगत स्तर से निकाल कर विश्व के हित के लिए प्रयोग में लाता है। उसकी अहंता और ममता की वृत्तियाँ व्यक्तिमात्र की संकुचित परिधि से निकल कर विश्वभाव को धारण करती हैं। जब मानव सर्वव्यापक

---

1. अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥ से लेकर
तुल्यनिन्दा स्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर् भक्तिमान् मे प्रियो नरः॥ तक

सहानुभूति से भरे हुए व्यवहार के योग्य हो जाता है, तो वह सच्ची मानवता का परम साधक बन जाता है।

4. करुण-भाव –

जब मानव दूसरे व्यक्ति के दुःख को देखकर अपने सुख को भूल जाता है और करुणा से भर कर दूसरे के दुःख को यथाशक्ति दूर करने का यत्न करता है तो वह साक्षात् देवतुल्य हो जाता है।

5. दुःख और सुख में समता –

संसार में जिस प्रकार अन्धकार और प्रकाश दोनों स्वाभाविक क्रम में चलते रहते हैं, वैसे ही जीवन में दुःख और सुख का आवागमन होता रहता है। सदा न दुःख रहता है और न ही सदा सुख। ऐसा सोच कर दुःख और सुख की दोनों अवस्थाओं में मानव को समभाव में रहना चाहिए।

6. क्षमा-शीलता –

जैसे हमसे अकस्मात् कोई अपराध हो जाता है, वैसे दूसरों से भी हमारे प्रति कोई अपराध अनजाने में हो सकता है। ऐसी स्थिति में हमें दूसरों के प्रति क्षमाशील होना चाहिए। अतः हमें बिना कारण ही व्याकुल नहीं होना चाहिए।

7. संतोष –

हमें सदा अपने कर्त्तव्य का ही पालन करते रहना चाहिए। हमें अपने दुःख और सुख के प्रति समभाव रखना चाहिए। ये सुख और दुःख तो शरीर के स्वाभाविक धर्म हैं। अतः ऐसा विचार करते हुए हमें सदा सन्तोष की वृत्ति को धारण किए रहना चाहिए।

8. योग –

हमें अपने ही सुख का ध्यान नहीं रखना चाहिए, बल्कि दूसरों के सुख का भी ध्यान रखना चाहिए। जिस कर्म को करने से हमें दुःख पहुँचता हो, ऐसा कर्म हमें दूसरों के प्रति भी नहीं करना चाहिए। जो इस प्रकार से अपना जीवन धारण करता है, वही योगी है।

9. संयम और मर्यादा –

हमें काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार रूपी अपनी मानसिक वृत्तियों पर नियन्त्रण रखना चाहिए और अपने जीवन को सर्वदा व्यवस्थित रूप से व्यतीत करना चाहिए।

10. निश्चय की दृढ़ता –

व्यक्ति को अपने जीवन में उतनी ही सफलता मिलती है, जितनी उसकी निश्चय करने की वृत्ति दृढ़ होती है। अतः व्यक्ति को अपने निश्चय पर सदा दृढ़ रहना चाहिए। श्रद्धा और निष्ठा भी इसी वृत्ति के वाचक शब्द हैं।

11. सच्चा समर्पण –

मानव जब तक अपने लक्ष्य के प्रति पूर्णरूप से समर्पित नहीं होता तब तक उसे अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः जो भी कार्य हमें करना हो, उसे सच्ची लगन से करना चाहिए।

12. हर्ष-मुक्ति –

व्यक्ति को सर्वदा हर्ष अर्थात् अभिमान तथा अहंकार से मुक्त रहना चाहिए।

13. अमर्ष-मुक्ति –

मानव को समाज में सर्वदा अमर्ष अर्थात् असहनशीलता से मुक्त रहना चाहिए। उसे सदा सहनशील होना चाहिए।

14. भय-मुक्ति –

व्यक्ति को सदा अपने कर्त्तव्य का पालन करते चले जाना चाहिए। ऐसा करते हुए उसे न किसी से भय खाना चाहिए और न किसी को भयभीत ही करना चाहिए।

15. उद्वेग-मुक्ति –

प्रत्येक परिस्थिति में व्यक्ति को अपना कार्य करते हुए, उद्वेग अर्थात् घबराहट से मुक्त रहना चाहिए।

16. शान्त व्यवहार –

जो साधक हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेग रूपी मानसिक रोगों से मुक्त रहता हुआ, अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए शान्त-व्यवहार से युक्त रहता है, वह जीवन में जीते हुए ही मोक्ष का आनन्द प्राप्त कर लेता है।

17. अनपेक्ष-भाव –

जब व्यक्ति का अपना कर्त्तव्य-कर्म ही उसका ध्येय होता है और यह कर्म जब निष्काम और निरीह भावना से युक्त होकर किया जाता है तो यही कर्म अनपेक्ष-भाव से युक्त होता है। व्यक्ति द्वारा किया जाने वाला ऐसा कर्म हानि-लाभ के प्रति उदासीन होता है।

18. शौच –

व्यक्ति को शारीरिक पवित्रता तथा मानसिक पवित्रता का सदा ध्यान रखना चाहिए। शारीरिक पवित्रता तो जल द्वारा हो जाती है, पर मानसिक पवित्रता अपनी वासनाओं को संयम में रखने से होती है।

19. दक्षता –

शक्ति ही जीवन है। अतः व्यक्ति को सदा अपनी दबी हुई शक्ति को निरन्तर जगाते हुए, कर्मशील और कर्मवीर बनना चाहिए।

20. उदासीनता –

जहाँ तक सुख की मिठास और दुःख की कड़वाहट का प्रश्न है, वह साधारण व्यक्ति की तरह कर्मयोगी को भी अनुभव होती है, पर कर्मयोगी अपने आप को दोनों परिस्थितियों में एक समान रखता है। यही उसका उदासीन भाव है।

21. कर्म-त्याग –

कर्मयोगी तभी तक कर्म को अपना समझता है, जब तक वह उसे कर्त्तव्य-कर्म समझता है। जब किए जाने वाले उस कर्म का कोई फल प्राप्त होने वाला होता है तो वह उस ओर से पीठ मोड़ लेता है। यही आदर्श कर्मयोग के अनुसार कर्म-त्याग कहा जाता है।

22. वीरता –

वीरता मन के उस अदम्य उत्साह का नाम है, जो किसी स्थिति में भी भय को नहीं जानता।

23. हर्ष-त्याग –

हर्ष शब्द का अर्थ है वह रस जो प्रत्येक व्यक्ति को अच्छा लगता है, पर वीर व्यक्ति की दृष्टि भोगों के रस और स्वाद पर नहीं होती। वह उन भोगों को संयमित करते हुए उनके भोग को केवल शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य लाभ करने तक ही सीमित रखता है।

24. द्वेष-त्याग–

इसका अर्थ किसी को न चाहना अथवा किसी के प्रति अरुचि रखना है, पर वीर व्यक्ति को इस प्रकार का भाव किसी के भी प्रति अपने मन में नहीं रखना चाहिए। उसे केवल अपने कर्त्तव्य पर ही ध्यान रखना चाहिए।

25. शोक-त्याग –

वीर-त्यागी पुरुष प्रस्तुत क्षण के अन्दर ही जो कर्त्तव्य अपने सामने पाता है, उसी के पालन में अपना ध्यान केन्द्रित करता है। वह उससे पहले अथवा बाद के किसी क्षण की प्रतिकूल वेदना का न स्मरण करता है और न उसके द्वारा सन्तप्त एवं दु:खी होता है।

26. आकाँक्षा-त्याग –

आकांक्षा उस अतृप्ति का नाम है, जिसमें कामना कभी पूरी नहीं होती। इसी मानसिक वृत्ति को तृष्णा भी कहते हैं, जो प्राणी के अन्दर बढ़ती ही रहती है। अत: मानव को भविष्य में प्राप्त होने वाले अनुकूल अनुभवों की पहले से ही इच्छा करना या लालसा अथवा तृष्णा रखना छोड़ देना चाहिए।

27. शुभाशुभ-त्याग –

अनुकूल फल प्राप्त होने के कारण कोई कर्म शुभ हो जाता है और प्रतिकूल फल की प्राप्ति के कारण कोई कर्म अशुभ हो जाता है। व्यक्ति को कोई भी कर्म शुभ या अशुभ नहीं समझना चाहिए। उसे जो भी कर्त्तव्य-कर्म सामने उपस्थित हो, उसे ही करने में लगे रहना चाहिए।

28. शत्रुता और मित्रता में समता –

समता-धर्म का पालन करने वाला साधक किसी व्यक्ति के भी प्रति अपने मन में शत्रुता का भाव नहीं रखता। उसके अपने मित्र तो मित्र होते ही हैं, पर वह अपने व्यवहार से शत्रु को भी मित्र बना लेता है।

29. मान और अपमान में समता –

मान और अपमान की दोनों परिस्थितियों में व्यक्ति को अपनी मानसिक समता बनाए रखना चाहिए। ऐसा व्यक्ति न तो मान-सम्मान के प्रलोभनों में फँसता है और न ही अपमान के भय से घबराता है। वह केवल एक बात का ध्यान रखता है और वह है उसकी आत्म-तुष्टि।

30. सर्दी-गर्मी, सुख और दु:ख में समता –

सर्दी और गर्मी तथा सुख और दु:ख का चक्र अपने प्राकृतिक नियमों के अनुसार घूमता

रहता है। ऐसा जानकर साधक इन विभिन्न अवस्थाओं में भी एक-रस बना रहता है।

31. असंगता –

प्रतिक्षण परिवर्तनशील परिस्थितियों में साधक अपने मन पर किसी भी प्रकार की विशेष छाप को पड़ने नहीं देता। ऐसा साधक किसी भी किए जाने वाले कर्म और उसके फल के प्रति अपने भीतर आसक्ति उत्पन्न नहीं होने देता। ऐसी उदासीन रहने वाली वृत्ति का ही नाम असंगता है।

32. निन्दा और स्तुति में समता –

समता-धर्मी साधक वही कर्म करता है जो उसके लिए करना उचित होता है। ऐसा करते हुए वह केवल अपने कर्त्तव्य-कर्म पर ध्यान रखता है, वह न तो किसी द्वारा की जाने वाली निन्दा का भय खाता है और न ही की जाने वाली किसी प्रकार की स्तुति के प्रलोभन में फँसता है।

33. मौन-प्रतिष्ठा –

समता-धर्मी साधक अपनी वाणी के उद्गारों को सदा नियन्त्रित रख कर केवल उतना ही बोलता है, जितना आवश्यक होता है। वह व्यर्थ बकवाद नहीं करता। वह सदा अपनी वाणी को नपी-तुली, प्रिय व हितकारी बनाने का यत्न करता है।

34. अविचल-संतोष –

समता-धर्मी उपासक का हार्दिक भाव सदा एक-रस बना रहता है। अप्रिय अनुभव प्राप्त होने पर वह शोक नहीं करता और प्रिय अनुभव प्राप्त होने पर वह प्रसन्न नहीं होता। वह सदा भीतरी समता को बनाए रखता है।

35. अनिकेत-भाव –

साधक सांसारिक अस्थिरता को देखते हुए अपनी स्थिति को भी संसार में अस्थिर ही समझता है। ऐसी सांसारिक स्थिति में वह साधक किसी भी प्रकार के मोह में नहीं फँसता। वह संसार में केवल एक यात्री की तरह ही रहता है।

36. स्थिरमति –

संशय द्वारा दोलायमान होने वाली बुद्धि को स्थिर करने से ही प्रत्येक साधक को अपने अभीष्ट कल्याण की प्राप्ति हो सकती है। किसी कार्य के सम्बन्ध में संशय में न पड़ कर अपनी कर्त्तव्य-बुद्धि का पालन करना ही स्थिरमति है।

उपरिवर्णित सदाचार के सार का पालन करने से साधक अपना तो कल्याण करता ही है, पर इससे समाज के दूसरे लोगों का भी कल्याण स्वतः ही हो जाता है।

– साधु आश्रम, होशियारपुर।

–: सन्दर्भग्रन्थ :–

मानवता का मान (**डॉ. विश्वबन्धु**), विश्वेश्वरानन्द-वैदिक शोध संस्थान-1961, होशियारपुर।

संस्कारों का साक्षात्कार एवं पुनर्जन्म

– महात्मा चैतन्यमुनि

संस्कारों के साक्षात्कार से पूर्वजन्म का ज्ञान होता है। इस सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द जी 'उपदेश मंजरी' में (छठा उपदेश) लिखते हैं– '........जीव की शरीरचेष्टा होने से पूर्व प्रथम हमें प्रत्यक्ष होता है, फिर आत्मा पर संस्कार होता है, फिर स्मृति होती है और पश्चात् किसी कार्य के विषय में प्रवृत्ति–निवृत्ति होती है, यह प्रकार सर्वत्र प्रतीत होता है। अब देखो कि शरीरयोनि में से बच्चा बाहर पड़ने के पूर्व पेट में था, बाहर गिरते ही श्वास लेने वा रोने लगता है, तो यह प्रवृत्ति उसे पूर्व संस्कारों के बिना कैसे होगी? माता का स्तन खींच कर दूध पीने लग जाता है, यह प्रवृत्ति कहाँ से हुई? दूध के विषय में तृप्त होने पर निवृत्त होता है, तो यह निवृत्ति भी किस प्रकार की है? माता ने कुछ धमकी दी, तो झट बच्चा समझता है, तो यह पूर्व संस्कारों के बिना कैसे होगा? इससे निश्चयपूर्वक पूर्वजन्म था, यह प्रत्यक्ष और अनुमान दोनो प्रमाणों से सिद्ध होता है। पुनरपि, सब चराचर सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का क्रम यदि देखा जाए तो उस सादृश्य से जीव–सृष्टि का भी पूर्वजन्म था। यह हमारा मध्यम जन्म है और मोक्ष होने तक अभी भी जन्म होने वाले हैं। इस परंपरा से इस मध्यजन्म की संभावना तभी हुई जब कि पूर्वजन्म पहले था, क्योंकि यदि कूएँ में जल न हो तो डोल में पानी कहाँ से आवे?'

पूर्वजन्म की स्मृति न रहने का कारण संस्कारों की निर्बलता है तथा इसके मुख्यत: दो कारण हैं। एक तो ज्ञान के समय उनकी गहरी छाप न पड़ना और दूसरा आवश्यकता न होने के कारण उनके बार–बार न उभरने के कारण भी वे शिथिल हो जाते हैं। यदि संस्कारों की निर्बलता के सभी कारण दूर हो जाएं तो पूर्वजन्म की स्मृति हो सकती है और बहुत से लोगों को होती भी है। मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि किसी बीती हुई घटना को याद करने के लिए हमें उतना ही समय लगेगा जितना कि उसे बीते हुए हो चुका है। क्योंकि उसे याद आने से पहले की प्रत्येक छोटी–छोटी बात भी याद आयेगी जो उस समय से अब तक घटित हुई है। अत: जितना समय किसी घटना के घटित होने में लगता है उतना ही उनके याद करने में लगेगा। इससे यह बात मनन करने योग्य है कि हमें प्रत्येक उस संस्कार को आत्मसात् करना होगा जो–जो हमारे सूक्ष्म शरीर पर पड़े हों.......अन्त:करण पर पड़े किसी भी संस्कार के जागृत होने के लिए उपयुक्त उद्बोधक चाहिए तथा उद्बोधक के अभाव में उन संस्कारों का स्मरण नहीं रहता है और यदि उद्बोधक का अभाव न रहे तो पुरानी घटनाएँ स्मरण में आ जाती हैं क्योंकि स्मृति का कभी अभाव नहीं होता है...... जिससे स्मृति, राग, द्वेष तथा सुख–दु:ख प्राप्त होते हैं और धर्माधर्मरूप अदृष्ट का नाम संस्कार है। इस प्रकार स्मृति एवं राग–द्वेष की चित्त में रहने वाली वासना और सुख–दु:खरूप भोग के जनक धर्माधर्मरूप प्रारब्ध कर्म ये दोनों संस्कार हैं। हालांकि बहुत बार साधारण जनों को भी संस्कारों के उद्बोधित होने पर पूर्वजन्म की स्मृतियां आते हुए देखी गई हैं मगर जहाँ तक योगी की बात है सो जो योगी संयम के द्वारा उक्त दोनों प्रकार के संस्कारों को साक्षात्

कर लेता है उसे पूर्वजन्म का ज्ञान हो जाता है। जिन संस्कारों से पूर्व अनुभव किए हुए पदार्थों में स्मृति, इच्छा तथा द्वेष उत्पन्न होता है उन्हें 'वासना' और जिन से जन्म, आयु तथा भोग की प्राप्ति होती है उन्हें 'धर्माधर्म' कहते हैं।

योगदर्शन का सूत्र है- योगी संयम के माध्यम से संस्कारों का साक्षात्कार करके 'पूर्वजन्म का ज्ञान' प्राप्त कर लेता है।[1] इस सूत्र की व्याख्या करते हुए महर्षि व्यास जी ने इन दो प्रकार के संस्कारों की विस्तृत जानकारी दी है। उनकी व्याख्या करते हुए श्री राजवीर शास्त्री जी ने अपने भाष्य में लिखा है-'जीवात्मा जो भी शुभाशुभ कर्म करता है, उसके संस्कार चित्त-पटल पर अंकित होते हैं और यह चित्त सूक्ष्म शरीर का एक घटक है जो जीवात्मा के साथ जन्म-जन्मान्तरों में साथ जाता है। सूक्ष्म-शरीर के नाश से इस सूक्ष्म-शरीर का नाश नहीं होता है। जैसे ग्रामोफोन के प्लेट के रिकार्ड होते हैं, वैसे ही जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार चित्त पर अंकित होते रहते हैं और वे संस्कार दो प्रकार के होते हैं- (1) एक स्मृति और अविद्यादि क्लेशों के कारण-भूत वासनारूप संस्कार और (2) दूसरे शुभाशुभ कर्मों के संस्कार, जिनके परिणाम-स्वरूप जीवात्मा सुख-दुःख भोगता है। उन संस्कारों में संयम करने से योगी को उनका साक्षात्कार हो जाता है और वे संस्कार जिस देश,काल तथा निमित्त से बने हैं, वे सब योगी को स्मरण हो जाते हैं। यही पूर्वजन्म का ज्ञान है। अनेक अबोध बालक जिनके संस्कार अच्छे होते हैं वे अपने पिछले जन्मों की बातें बता देते हैं और जैसे-जैसे इस जन्म के संस्कारों का आवरण पड़ता जाता है, वैसे-वैसे वे पूर्वजन्म की बातों को भूल जाते हैं। योगीपुरुष संयम के द्वारा उस आवरण को हटा देता है, जिससे वह चित्त-पटल पर अंकित संस्कारों को समझने में समर्थ हो जाता है। व्यासभाष्य में अगले जन्म के कारणभूत संस्कारों को जानने से भावी जन्म के जानने की बात भी लिखी है, वह भी संस्कारों को जानने के कारण ही होता है और यहाँ व्यासभाष्य में पूर्वजन्म को जानने के विषय में दो ऋषियों का प्राचीन आख्यान भी दिया है जिससे स्पष्ट है कि योगी संस्कारों के आश्रय से जन्म-जन्मान्तरों की बातों को जान लेता है।'

मनु महाराज कहते हैं - मनुष्य निरन्तर वेद का अभ्यास करने से आत्मिक तथा शारीरिक पवित्रता से तथा तपस्या से और प्राणियों के साथ द्रोहभावना न रखते हुए अर्थात् अंहिसाभावना रखते हुए पूर्वजन्म की अवस्था को स्मरण कर लेता है।[2] योगदर्शन में अन्यत्र भी कहा है कि इस योगी को (जन्मकथन्ता सम्बोध) होता है।[3] मैं कौन था, मैं कैसा था, यह क्या है, यह कैसे हुआ है, हम कौन होंगे, कैसे होंगे? इस प्रकार, इस योगी को पूर्वकाल, परकाल और मध्यकाल की अपने जन्म-विषयक जिज्ञासा स्वतः उदित हो जाती है। ये पूर्वलिखित सिद्धियाँ यम-विषयक स्थिरता होने पर उदित होती हैं। 'संस्कारों का साक्षात्कार होने से पूर्वजन्म का ज्ञान होता है।' इसे दार्शनिक दृष्टि से समझने के लिए हम डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्ता-लंकार (संस्कार-चन्द्रिका, पृ. 505) जी के विचारों को यथातथ्य प्रस्तुत करना चाहते हैं। वे लिखते हैं- 'पूनर्जन्म के विषय में अनेक सन्देह की बातें उठ खड़ी होती हैं। सबसे बड़ा सन्देह यह किया जाता है कि पुनर्जन्म के मानने वाले यह नहीं समझा पाते कि जिन लोगों को पिछले जन्म की स्मृति हो आती है वह किस तरह आती है? शरीर के मर जाने के बाद स्मृति का आधार मस्तिष्क तो नष्ट हो जाता है, फिर स्मृति

1. योगदर्शन, 3.18. 2. मनु., 4.148. 3. योगदर्शन, 2. 39.

के आधार मस्तिष्क के मिट जाने पर स्मृति कहाँ से उठ खड़ी होती है? इस शंका का मूल यह समझना है कि हम जिन स्थूल इन्द्रियों से ज्ञान प्राप्त करते हैं, वे स्थूल इन्द्रियाँ ही सब प्रकार के ज्ञान का साधन हो सकती हैं, मनुष्य के पास इनके अतिरिक्त ज्ञान का कोई अन्य साधन नहीं है। हमारा यह समझना भ्रममूलात्मक है।

'मनोविश्लेषणवाद' के प्रवर्तक सिगमंड फ्रायॅड थे, परन्तु उनके साथ युंग भी मनोविश्लेषणवाद के प्रवर्तकों में से थे। एक तरह से फ्रायॅड तथा युंग- इन दोनों को मनोविश्लेषणवाद का पिता कहा जा सकता है। युंग का कहना है कि जिस प्रकार हमारी इन्द्रियों में निहित 'ज्ञान-चेतना' हमारे लिए ज्ञान प्राप्त करने का साधन है, उसी प्रकार बिना इन्द्रियों की सहायता से हमारी 'अज्ञात-चेतना' भी हमारे लिए ज्ञान प्राप्त करने का बड़ा भारी साधन है। 'ज्ञान-चेतना' उस क्षेत्र में काम करती है जो देश तथा काल के बन्धन से बन्धा हुआ है; 'अज्ञात-चेतना' उस क्षेत्र में काम करती है जिसमें देश-काल का बन्धन नहीं है, वह देश तथा काल को लांघ कर जहाँ चाहती है विचरती है। इस प्रकार 'अज्ञात-चेतना' उस क्षेत्र का साक्षात्कार कर सकती है, जो 'ज्ञात-चेतना' के लिए 'भूत तथा भविष्यत्' काल है और जिन कालों में 'ज्ञात-चेतना' का प्रवेश नहीं हो सकता। 'ज्ञात-चेतना' का क्षेत्र 'वर्तमान काल' तथा वस्तु की समीपता है। 'अज्ञात-चेतना' का क्षेत्र 'भूत तथा भविष्यत्' है, दूरी है। युंग का कहना है 'हमें बाधित होकर यह मानना पड़ता है कि 'अज्ञात-चेतना' में 'अतीन्द्रिय-ज्ञान' विद्यमान रहता है, ऐसा ज्ञान जिसमें देश तथा काल का व्यवधान मिट जाता है- भूत तथा भविष्यत् की घटनाओं की सत्ता उसे अपने सामने बिना स्थूल इन्द्रियों के दीखती है, वह दीखना, वह ज्ञान कारण-कार्य के बन्धन से बन्धा नहीं होता, वह ज्ञान कारण-कार्य की सीमा को लांघ जाता है।'

जिन लोगों को पिछले जन्म की स्मृति होती है या जो लोग भविष्य की घटनाओं के लिए भविष्य-वाणी कर देते हैं जो कालान्तर में सत्य घटित हो जाती है या जिनको स्वप्न में ऐसी घटनाएँ दीख जाती हैं जो अभी नहीं घटी परन्तु समय आने पर घट जाती हैं- यह सब ज्ञान 'अज्ञात-चेतना' द्वारा होता है। हमारी 'ज्ञात-चेतना' साधारण तौर पर वर्तमान पर केन्द्रित रहती है, परन्तु जब 'ज्ञात-चेतना' शिथिल होकर ढीली पड़ जाती है, जब 'ज्ञात-चेतना' को हर समय जकड़े रखने वाला तथा कारण-कार्य के नियम में उलझे रहने वाला सजग मन बुद्धिपूर्वक सोचना छोड़ देता है, तब 'अज्ञात-चेतना' को काम करने का अवसर मिल जाता है और तभी यह चेतना-मन- भूत तथा भविष्यत् में भ्रमण करने लगता है, भूत की घटनाओं को मानो प्रत्यक्ष देखता है, भविष्य में होने वाली घटनाओं के भी पार चला जाता है। युंग ने अपनी 'जीवन-कथा' में अपनी स्वप्निल-अवस्था की भूत तथा भविष्यत् पर प्रकाश डालने वालीं अनेक घटनाओं का उल्लेख किया है जिनका उन्होंने अपने जीवन में अनुभव किया।' प्रत्येक व्यक्ति को पिछले जन्म का अनुभव क्यों नहीं होता है.......' इसके अनेक कारण हो सकते हैं जिनमें से कुछ निम्न हैं-

(1) इसका यह कारण हो सकता है कि जैसे संगीत की जन्मगत प्रतिभा हर किसी में न होकर किसी-किसी में पाई जाती है, वैसे ही 'अज्ञात-चेतना' की यह असाधारण-शक्ति भी सब में न होकर किसी-किसी में पाई जाती है। रामानुजम् नाम के एक व्यक्ति हुए हैं जो गणित का कितना ही कठिन प्रश्न क्यों न हो उसे हल करने की लम्बी-चौड़ी प्रक्रिया में से गुज़रे बिना उसके हल पर पहुँच जाते थे। किसी प्रश्न को हल करने लिए मस्तिष्क द्वारा सारी प्रक्रिया का करना लाज़मी है,

परन्तु उन्हें इस सबकी जरूरत नहीं पड़ती थी। इससे स्पष्ट है कि अतीन्द्रिय रूप में भी ज्ञान प्राप्त होता है, परन्तु इस प्रकार ज्ञान प्राप्त करना सबके बस की बात नहीं है। जिसे असाधारण-शक्ति प्राप्त हो वही उस ज्ञान का भागीदार हो सकता है।

(2) दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि इस शक्ति का हर किसी में न होना प्रकृति का 'जीव-शास्त्रीय-सुरक्षा' का एक साधन है। प्रकृति का यह नियम है कि वह ऐसी व्यवस्था रखती है कि जिससे प्राणी की सुरक्षा बनी रहे। अगर हर किसी को विगत जन्म की घटनाएँ स्मरण आती रहें, तो यह जीवन अस्त-व्यस्त हो जाए। जीवन को अस्त-व्यस्त न होने देने के लिए प्रकृति की यह एक तरकीब है जिससे पिछला याद नहीं रहता।

(3) तीसरा कारण यह भी हो सकता है कि यद्यपि 'अज्ञात-चेतना' द्वारा अतीन्द्रिय-ज्ञान की शक्ति का बीज हर-किसी में विद्यमान है, परन्तु कुछ इने-गिने व्यक्तियों को छोड़कर वह दूसरों में क्षीण हो गया है।

(4) यह भी कहा जा सकता है कि 'ज्ञात-चेतना' का उपयोग करने के हम इतने आदी हो गए हैं कि 'अज्ञात-चेतना' को काम करने का अवसर ही नहीं प्राप्त होता।

(5) कई दार्शनिकों का कहना यह भी है कि मानव अभी विकास की उस स्थिति में नहीं पहुँचा जहाँ पहुँचकर 'अतीन्द्रिय-ज्ञान' उसके लिए स्वाभाविक हो जाए और वह 'अज्ञात-चेतना' द्वारा उस ज्ञान को प्राप्त करने लगे जिसे अभी कुछ इने-गिने लोग ही स्वाभाविक रूप से प्राप्त करने की शक्ति रखते हैं। हो सकता है कि मानव का विकास होते-होते 'अज्ञात-चेतना' से ज्ञान प्राप्त कर सकना हर किसी के लिए संभव हो जाए।

(6) जिन लोगों को पिछले जन्म की घटनाएँ स्मरण हो आती हैं उसका कारण यह हो सकता है कि उनकी मृत्यु किसी भयंकर घटना से हुई होती है और उस भयंकरता का उन पर अमिट प्रभाव पड़ा होता है। प्रायः देखा गया है कि जिन व्यक्तियों को गत-जन्म की स्मृति हो आती है वे यह बतलाते हैं कि उनकी मृत्यु किसी दुर्घटना से हुई थी- किसी को कत्ल किया गया था, कोई नदी में डूब मरा था, किसी को अन्य किसी भयंकर घटना का शिकार होना पड़ा था। यह समाधान कुछ-एक दृष्टान्तों के लिए ही दिया जा सकता है, सब दृष्टान्तों के लिए नहीं।

महाभारत में कहा गया है कि 'जो व्यक्ति सहसा, अचानक किसी दुर्घटनावश मर जाते हैं और एकदम ही उनका पुनर्जन्म हो जाता है, उनका पुनर्जन्म का पुराना संस्कार कुछ समय तक बना रहता है। यही कारण है कि संसार में जो 'जातिस्मर'-अपने पिछले जन्म का स्मरण रखने वाले उत्पन्न होते हैं। वे ज्यों-ज्यों बड़े होते जाते हैं, त्यों-त्यों उनकी पिछले जन्म की स्मृति नष्ट होती जाती है।[4] लगभग इसी प्रकार के विचार गीता में भी व्यक्त किए गए हैं। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे कुन्ती के पुत्र अर्जुन! जिस-जिस भावना को स्मरण करते हुए मनुष्य अन्तकाल में शरीर को छोड़ता है, उस-उस भावना में रंगा होने के कारण वैसे ही कलेवर को प्राप्त होता है।[5]

–महादेव, सुन्दरनगर-174401 (हि. प्र.)

---

4. महाभारत, अनुशासनपर्व, 227-32, 33.

5. गीता, 8.6.

महाकवि अश्वघोष की रस-अभिव्यञ्जना के द्योतक उपमान

– डॉ. राजकुमार महाजन

यद्यपि अश्वघोष बौद्ध-दार्शनिक थे तथा अपनी सभी रचनाओं में उनका मुख्य लक्ष्य निर्वाणमार्ग का दिग्दर्शन करवाना था फिर भी उन्होंने अपने महाकाव्यों में काव्य की सभी परम्पराओं, रूढ़ियों और मान्यताओं की सफल अभिव्यंजना करने का भी प्रयास किया है। रस के बिना तो किसी वस्तु का प्रवर्तन सम्भव नहीं है अतएव अश्वघोष ने काव्य में रस की अनिवार्यता को हृदय से स्वीकार किया है। अश्वघोष की काव्यप्रतिभा की प्रमुख विशेषता यह है कि वे रस की अभिव्यंजना भी विविध उपमानों की सुष्ठु योजना से कराते हैं। यद्यपि उनके दार्शनिक विचारों में शान्तरस की प्रमुखता स्पष्ट परिलक्षित होती है परन्तु फिर भी उनकी शृंगार, करुण, वीर, रौद्र, भयानक, बीभत्स, वात्सल्य रसों की मार्मिक अभिव्यंजना उपमानों के सुन्दर नियोजन से उनके महाकाव्यों में निखार लाई है तथा अश्वघोष को दार्शनिक होने के साथ महाकवियों की पंक्ति में भी उपस्थित करने में सक्षम हुई है।

सर्वप्रथम अश्वघोष के **शृंगार रस** पर विचार किया जाएगा जिसमें अश्वघोष ने नन्द और सुन्दरी के परस्पर प्रेम को व्यक्त करते हुए किन्नर और किंपुरुष को उपमान रूप में लिया है: (एक दूसरे के प्रति) भावानुरक्त पर्वत के झरने पर स्थित हुए किन्नर और किंपुरुष के समान दोनों क्रीड़ा करते हुए (अपनी-अपनी) रूपशोभा से एक-दूसरे को चुनौती देते हुए के समान सुशोभित हुए।[1] एक स्थान पर कहा गया है कि उस सुन्दरी को नन्द ने उसी प्रकार आलिंगित किया जिस प्रकार वायु से प्रकम्पित लता शालवृक्ष को आलिंगित करती है।[2] यहाँ पर सुन्दरी के लिए लता तथा नन्द के लिए शालवृक्ष उपमान का प्रयोग आलिंगन शृंगार के संयोगपक्ष का द्योतक है।

बुद्धिचरित में सोती हुई[3] एवं कुमार के दर्शन के लिए हड़बड़ाहट में आती हुई सुन्दरियों के चित्रण में भी उपमानों का प्रयोग शृंगाररस के संयोग पक्ष का द्योतक है।[4]

विप्रलम्भ शृंगार की अभिव्यंजना करने के लिए चक्रवाक/ चक्रवाकी को उपमान रूप में प्रयुक्त करना संस्कृत-साहित्य की प्रमुख विशेषता रही है। अश्वघोष ने भी अपने महाकाव्यों में शृंगार के वियोगपक्ष को प्रस्तुत करने के लिए चक्रवाक/ चक्रवाकी उपमान का प्रयोग अपने दोनों महाकाव्यों में पाँच बार किया

1. सौन्दरनन्द, 4/10.
2. सौन्दरनन्द, 4/ 33.
3. बुद्धचरित, 5/51, 52, 62.
4. बुद्धचरित, 4/33, 38. 8/20.

है। सौन्दरनन्द में नन्द और सुन्दरी के[5] तथा बुद्धचरित में बुद्ध और यशोधरा के[6] वियोगभाव को प्रकट करने के लिए चक्रवाक/ चक्रवाकी को उपमान रूप में प्रयुक्त किया गया है।

विप्रलम्भ शृंगार की अभिव्यंना-हेतु एक स्थान पर मृग/ मृगी को भी उपमान रूप में प्रस्तुत किया गया है- "चिन्ता के कारण उदास तथा निश्चल नेत्रों वाली उस सुन्दरी ने जाते हुए अपने पति का उसी प्रकार ध्यान किया जिस प्रकार कानों को ऊपर किए हुए शष्प का परित्याग करने वाली तथा मुख को घुमाए हुए मृगी दूर गए हुए मृग का ध्यान करती है।"[7] एक अन्य स्थान पर हँस/ हँसिनी को उपमान रूप में प्रस्तुत किया गया है[8] जो विप्रलम्भ शृंगार का सूचक है। इस प्रकार शृंगाररस की अभिव्यंजना में सुष्ठु एवं स्वाभाविक उपमानों का प्रयोग द्रष्टव्य है।

महाकवि अश्वघोष ने शृंगाररस के साथ **करुणरस** की भी कोमल और भावप्रवण अभिव्यंजनाहेतु सुन्दर उपमानों की योजना की है। अत्यन्त कारुणिक क्रन्दन के लिए उपमान के रूप में कुररी का उल्लेख भारतीय साहित्य में बराबर पाया जाता है। कालिदास के पूर्व के साहित्य में भी इसका प्रयोग होने लगा था।[9] कालिदास की रचनाओं में भी करुण-क्रन्दन की अभिव्यक्ति के लिए इसका सुन्दर उपयोग हुआ है।[10] अश्वघोष ने भी बुद्धचरित में गौतमी की कारुणिक व्यथा को व्यक्त करने के लिए "कुररी" के हृदयद्रावक क्रन्दन से उसकी तुलना करके ही उसकी ठीक-ठीक अनुभूति अपने पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास किया है- "जिसका बच्चा नष्ट हो गया है ऐसी कुररी के समान शोक से विह्वल नेत्र वाली अश्रुमुखी गौतमी धैर्य छोड़कर विलाप करते हुए मूर्च्छित हुई।"[11] इसके अतिरिक्त मृत बच्चे वाली भैंस[12] तथा मृत बछड़े वाली गाय[13] को भी गौतमी के करुण-क्रन्दन की अभिव्यक्तिहेतु उपमान रूप में चुना गया है। इसी प्रकार करुणरस के द्योतक अनेक उपमानों का सुन्दर प्रयोग[14] अश्वघोष के महाकाव्यों में यथास्थान देखा जा सकता है।

काव्य में **वीररस** का होना भी शास्त्रीय-परम्परा के अनुसार परमावश्यक है अतएव अश्वघोष ने सौन्दरनन्द के सप्तदश सर्ग में आध्यात्मिक उपमानों के माध्यम से नन्द का आध्यात्मिक संघर्ष दिखाकर इसकी आपूर्ति में अपना कलात्मक वैचक्षण्य दिखलाया है- "सत्यज्ञानरूपी चाप लेकर, स्मृतिकवच को

---

5. सौन्दरनन्द 4/2, 6/22, 30, 7/11.
6. बुद्धचरित, 3/ 60.
7. सौन्दरनन्द, 4/ 39.
8. बुद्धचरित, 9/ 27.
9. महाभारत, 1/6.12, 270. 1; 11/12/10, रामायण, 4/19/28.
10. रघुवंश, 14/ 62.
11. बुद्धचरित, 8.51.
12. रघुवंश, 8/24.
13. रघुवंश, 9/ 62.
14. रघुवंश, 8/21, 23, 26, 27, 28, 36, 38. सौ. 6/32, 35, 7.7, 41.

बाँध, विशुद्ध शीलव्रत के वाहन पर समारूढ़ चित्त के युद्धस्थल में संस्थित क्लेश शत्रुओं के साथ युयुत्सु नन्द विजयेच्छा से डटा रहा।[15] इसके पश्चात् सात बोध्यरूपी तीक्ष्ण शस्त्रों को ग्रहण कर, उद्योगरूपी वाहन पर चढ़कर, अष्टांगिक मार्ग के आठ मातंगबलों के साथ उसने क्लेशचमू में प्रवेश किया।[16]''....... इस प्रकार उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में रूपात्मक उपमानों का सहारा लेकर कवि ने एक उत्तमोत्तम धीर-वीर-गम्भीर विजेता का चित्र प्रस्तुत किया है।

रौद्ररस की अभिव्यंजना करने वाले निम्न उपमानगर्भित दृष्टान्त द्रष्टव्य हैं- ''पर्वत के शिखर पर स्थित मेनका के प्रति कामासक्ति के कारण अनुरक्त हुए उस जालजंघ पर विश्वावसु ने क्रोधपूर्वक पाँव से प्रहार किया जैसे हिन्ताल वृक्ष पर वज्र प्रहार करता है[17]।'' तब उसने स्वर्ण-जटिल पैना कृपाण लेकर म्यान से निकाला जैसे बिल से विषैला सर्प निकला हो।[18]'' ''तब उस आश्रम को उन मुनियों से सूना देखकर वे उदास होकर क्रोध से जलते हुए सर्पों की तरह लम्बी साँस लेने लगे।[19]''

अश्वघोष ने बुद्धचरित के त्रयोदश सर्ग में भूतों के लिए विचित्र उपमानों यथा- घड़े के समान जाँघ वाले तथा कंकाल के समान मुख वाले[20], वानरसदृश धूम्र बाल तथा हाथियों के समान लम्बे कान[21], ताल वृक्ष के समान लम्बे तथा भेड़ों के सदृश मुखों वाले[22], बिलाव जैसे मुख वाले[23], सूर्यमंडल सदृश आँख वाले तथा वज्र के समान दृढ कान वाले[24] - इत्यादि उपमानों का प्रयोग किया है जो भयानक रस की साक्षात् अभिव्यंजना कराने में सक्षम हैं। इसी प्रकार कामवासना सम्बन्धी विषयों के लिए हड्डी के कंकाल[25], माँस के टुकड़े[26], वधस्थान[27], तलवार व काष्ठ[28] इत्यादि उपमान बीभत्सरस को द्योतित करते हैं।

इस प्रकार अश्वघोष ने अपने महाकाव्यों में विभिन्न रसों की अभिव्यंजना के लिए समुचित उपमानों का प्रयोग करके अपनी उज्ज्वल काव्यप्रतिभा को द्योतित किया है।

- प्राचार्य, एम. एम. डी. डी. ए. वी. महाविद्यालय, गिद्दड़बाहा (पंजाब)।

15. सौन्दरनन्द, 17/ 23.
16. सौन्दरनन्द, 17/ 24.
17. सौन्दरनन्द, 7/ 39.
18. बुद्धचरित, 6/ 46.
19. सौन्दरनन्द, 1/38.
20. बुद्धचरित, 13/ 20.
21. बुद्धचरित, 13/ 21.
22. बुद्धचरित, 13/ 23.
23. बुद्धचरित, 13/23.
24. बुद्धचरित, 13/ 35.
25. बुद्धचरित, 11/ 25.
26. बुद्धचरित, 11/ 26.
27. बुद्धचरित, 11/27.
28. बुद्धचरित, 11/ 31.

स्व. पद्मभूषण आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु

(अतीत की यादों के झरोखों से)

– प्रिं. उमेश चन्द्र शर्मा

आचार्य विश्वबन्धु जी के पहली बार दर्शन करने और उनका विद्वत्तापूर्ण भाषण सुनने के सुअवसर एवं सौभाग्य सन् 1957 में मिला था। उस समय हम डी. ए. वी. कॉलेज, होशियारपुर में बी. ए. (ऑनर्स) के छात्र थे। पं. रला राम जी वहाँ प्रिंसिपल थे। आचार्य विश्वबन्धु जी साधु आश्रम, होशियारपुर में स्थित विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के संस्थापक और संचालक थे।

एक बहुत छोटे कद का व्यक्ति, पाँव में साधारण गुरगाबी, शरीर पर अचकन और चूड़ीदार पायजामा तथा सिर पर सफ़ेद पगड़ी पहने जब कॉलेज हॉल में मंच पर से बोलने लगा तो वहाँ उपस्थित समस्त प्राध्यापक वर्ग और छात्र-समूह को अपने विद्वत्तापूर्ण भाषण से मन्त्रमुग्ध करता गया। सभी उनकी प्रशंसा करने लगे और उनके श्रद्धालु हो गए। हम भी उन्हीं में से थे।

कॉलेज के प्रिंसिपल पं. रलाराम जी भी आचार्य विश्वबन्धु जी की तरह अपनी सादी वेश-भूषा, योग्यता और विद्वत्ता के कारण कॉलेज में ही नहीं, अपितु होशियारपुर ज़िले के पूरे इलाके में लोगों की सराहना, सम्मान एवं श्रद्धा के पात्र थे। इन दोनों महानुभावों को एक साथ देखना, सुनना एक सुखद संयोग था। वे दोनों उच्चकोटि के विद्वान् थे, दोनों समर्पित आर्य समाजी थे, दोनों सादा जीवन और उच्च विचार की प्रतिमूर्त्ति थे और दोनों एक-दूसरे के परम मित्र भी।

सन् 1959 में जब हम पंजाब यूनिवर्सिटी कॉलेज, होशियारपुर में एम. ए. (हिन्दी) के छात्र थे, साधु आश्रम में आचार्य विश्वबन्धु जी के आवास पर पुनः उनके दर्शन करने गए। उस दिन रविवार था, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान में छुट्टी थी। आचार्य जी अपने कमरे के सामने छत पर धूप में चटाई बिछा कर बैठे मालिश कर रहे थे। उन्हें अभिनन्दन कर हम भी वहीं उनके साथ बैठ गए। उन्होंने पूछा– 'कसरत करते हो?' हमने कहा– 'जी हाँ।', 'कुश्ती भी लड़ते होंगे।' हमारा उत्तर 'हाँ' में था। कहने लगे– 'अच्छी बात है, स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का वास होता है।' उन्हें जब पता चला कि हम कुश्ती में फ़ैदर वेट के चैम्पियन हैं और पंजाब यूनिवर्सिटी कॉलेज की रेस्लिंग टीम के कप्तान भी तो बहुत ख़ुश हुए और कहा– 'मैं भी पठान-सा हूँ। मेरे से पंजा लड़ाओगे?' हमने विनम्रता से अपनी असमर्थता व्यक्त की तो वे बड़े ज़ोर से हँसे। उनके लिए पठान शब्द पौरुष का पर्याय था। वे विनोद-प्रिय व्यक्ति थे। हँसी-मज़ाक करना उनकी आदत

थी। मगर उस हँसी-मज़ाक में भी वे बड़े पते की बात कर जाते थे। उनकी हर बात में एक संकेत होता था,एक सन्देश,एक आदेश और उपदेश भी।

उसी साल जब हम होशियारपुर डिस्ट्रिक्ट ओलिम्पिक्स में बॉडी-बिल्डिंग प्रतियोगिता में 'मिस्टर होशियारपुर' चुने गए और विश्वबन्धु जी को पता चला तो उन्होंने 'विश्वज्योति' के स्वास्थ्य विशोषांक में प्रतियोगिता में दिए गए हमारे शारीरिक पोज़ का छायाचित्र छाप दिया जिसे हमने अपनी अलबम में आज तक संभाल कर रखा है।

हमने अपने कॅरिअर का आरम्भ तो सन् 1960 में प्राध्यापन-कार्य से ही किया था, मगर सन् '64 में कॅमिशंड ऑफ़िसर बन कर भारतीय सेना शिक्षण कोर में चले गए। वहाँ मन नहीं लगा तो सन् '71 में बतौर कप्तान वहाँ से विदा होकर जब पुनः सरकारी कॉलेज, होशियारपुर में प्राध्यापक-पद पर नियुक्त हो गए तो विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के सत्संग भवन में हमारे एक प्रवचन के लिए उपस्थित होने पर मंच-संचालक महोदय द्वारा हमारा एक संक्षिप्त और औपचारिक-सा परिचय देने पर आचार्य विश्वबन्धु जी उठे और कहा- ''ठहरो, इनका परिचय मैं देता हूँ। लाहौर में महात्मा हँसराज जी के अनुयायियों में से मेरे एक अन्तरंग साथी थे पं. अमरनाथ जी शास्त्री, जिन्होंने अपना समस्त जीवन निष्काम समाज-सेवा और संस्कृत-हिन्दी के प्रचार-प्रसार में लगा दिया था। प्रो. उमेश उन्हीं के सुयोग्य सुपुत्रों में से हैं......।'' आगे उन्होंने जो कुछ कहा, स्थानाभाव के कारण और आत्म-ज्ञापन से बचने के लिए हम इस प्रसंग को यहीं विराम देना चाहेंगे।

आचार्य जी के बारे में प्रो. (डॉ.) त्रिलोचन जी बिन्द्रा द्वारा लिखे ये शब्द देखिए- ''आचार्य विश्वबन्धु जी त्याग की मूर्त्ति थे। उनमें लालसा नाम मात्र की भी नहीं थी। वे जो भी चाहते थे, केवल संस्थान के लिए। अपने अनुयायी भक्तों द्वारा एक बार उनसे उनके अभिनंदन ग्रन्थ के संबंध में चर्चा की गई तो उन्होंने तुरन्त रोक दिया और कहा-जो रुपया आपने इस आयोजन पर व्यय करना है, उसको संस्थान के कार्य को आगे बढ़ाने के लिए व्यय करना बेहतर होगा।''

आचार्य विश्वबन्धु जी की सादगी अथवा सादेपन का तो कहना ही क्या! साधारण वेश-भूषा के अलावा वे जिस कमरे में रहते थे, उस में ईंटों का फ़र्श था, बिना गद्दियों के तीन कुर्सियाँ, एक तख़्तपोश, जिस पर पतली-सी दरी बिछी रहती थी। सामान रखने के लिए एक छोटा-सा टीन का ट्रंक होता था। थोड़े फटे कपड़ों को आचार्य जी स्वयं ही सूई-धागे द्वारा सी लेते थे। वस्तुतः सादगी ही सही अर्थों में किसी व्यक्ति की महानता का लक्षण है। सादगी से बड़ा कुछ नहीं।

एक सैनिक की नियमित और अनुशासित दिनचर्या, एक ब्रह्मचारी का सादा, शुद्ध और सात्विक भोजन और संयमित जीवन, एक महर्षि-मनीषी का चिन्तन-मनन, एक तपस्वी की

साधना, तपस्या और त्याग, हृदय की विशालता, मन की उदारता और आत्मा की उदात्तता– ये सभी मानवीय और दैवी गुण आचार्य जी के बहुमुखी व्यक्तित्व में घुल-मिल गए थे। उनके अस्तित्व के अभिन्न अंग हो गए थे। आचार्य जी वेद-शास्त्र और वैदिक वाङ्मय के अध्येता, आख्याता और व्याख्याता थे और आर्य संस्कृति के प्रचार-प्रसार में तो उन्होंने अपना सर्वस्व ही अर्पित कर दिया था।

आचार्य विश्वबन्धु वाणी और लेखनी दोनों के धनी थे। उनके सामान्य वार्तालाप में भी उनकी विद्वत्ता झलकती थी। वस्तुतः वे सर्वतोमुखी प्रतिभा के मालिक थे। संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी और पंजाबी– इन सभी भाषाओं पर उनका समानाधिकार था और पूरी पैठ-पकड़ थी।

विश्वबन्धु नाम से विख्यात होने से पहले का युवा चमन लाल अपनी उम्र से, अपनी अवस्था से कहीं अधिक योग्य था। त्रयशतक (श्रृंगार, नीति और वैराग्य) के अमर रचयिता राजा भर्तृहरि ने ठीक ही तो कहा है कि योग्यता में कभी उम्र नहीं देखी जाती और न ही साहस और शक्ति में शरीर का आकार-प्रकार।

आचार्य जी के भगीरथ-प्रयत्न में उनका साहस देखिए, उनकी शक्ति देखिए। सन् '47 में भारत-पाक विभाजन के वक्त आचार्य जी डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर में लालचन्द लाइब्रेरी में शोध-विभाग के प्रभारी थे। वहाँ हज़ारों वर्ष पुराने अनेकों हस्त-लिखित ग्रन्थ और सैंकड़ों दुर्लभ संदर्भ पुस्तकें विद्यमान थीं। उस समय पंजाब की राजधानी और प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र लाहौर पाकिस्तान के हिस्से आ गया। वहाँ एक भीम भयंकर प्रलयंकर परिस्थति पैदा हो गयी। आगज़नी शुरू हो गयी। मार-काट और बर्बरता का नग्न नृत्य होने लगा। भारतीय लोग वहाँ से धड़ाधड़ पलायन करने लगे।

मगर हमारे श्रद्धेय आचार्य जी अपने प्राणों तक की परवाह किए बिना वहीं डटे रहे। अपनी हिम्मत, हौसले और बुद्धि-कौशल के बलबूते वे वहाँ उक्त लाइब्रेरी में पड़ी 4000 मन के क़रीब समस्त दुर्लभ सामग्री को येन-केन-प्रकारेण एकत्र कर 4000 बोरों में भर-बाँधकर उन बोरों को अपने हाथों से सेबों से सी कर भारत जाते ट्रकों में यह कहकर डालते गए कि उन्हें भारत के किसी भी भाग में उतार देना। उन्हें इस काम में लगभग छः महीने लग गए। स्वयं भारत पहुँचकर उन्होंने जहाँ-तहाँ पड़े उन सभी बोरों को बटोरा, इकट्ठा किया और होशियारपुर में अपनी मनभायी जगह साधु आश्रम में विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान की स्थापना कर अपना प्रैस चलाकर कतिपय उच्चकोटि के विद्वान् और योग्य कर्मचारी नियुक्त करके उन ग्रन्थों पर शोध, उनका सम्पादन और प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया और आज वहाँ आप जो भी देख रहे हैं, उसी महापुरुष, उसी महान् तपस्वी की देन है जिन्हें लोग आचार्य विश्वबन्धु के नाम से जानते हैं, याद करते हैं और उनके प्रति श्रद्धा से नतमस्तक हो जाते हैं।

भारत के पूर्व प्रधानमन्त्री श्री लाल बहादुर जी शास्त्री की तरह आचार्य जी भी छोटे क़द-

काठ के एक बहुत बड़े व्यक्ति थे। उर्दू शायद मज़रूह सुल्तानपुरी का यह शे'र प्रसंगानुकूल कितना माक़ूल है :

मैं अकेला ही चला था जानिब-ए-मंज़िल,मगर
लोग साथ आते गए और कारवां बनता गया।

सन् 1973 में आचार्य जी शारीरिक तौर पर काफ़ी अस्वस्थ हो गए थे। उपचारार्थ उन्हें पी. जी. आई. चण्डीगढ़ ले जाना पड़ा। आख़िर उसी वर्ष पहली अगस्त को चण्डीगढ़ में ही उनका शरीर शान्त हो गया, यद्यपि मानसिक रूप से वे मरते दम तक स्वस्थ, सचेत और सन्तुलित रहे। उनके बीमार पड़ने पर उनके जो भी अनुयायी विद्वान् प्राध्यापक उन्हें मिलने, उनका हाल-चाल पूछने जाते तो उस समय वे उनसे शब्दों की व्युत्पत्ति के बारे में ही बात करते। अपने अन्त-समय तक उनका दमखम बराबर बना रहा।

'मरणं प्रकृतिः शरीरीणम्' – मृत्यु देहधारियों की प्रकृति है– **जो पैदा हो मौत उसको आए ज़रूर।** आचार्य जी इस शश्वत सत्य का अपवाद कैसे हो सकते थे? साधु आश्रम के मुख्य द्वार के साथ लगते प्रांगण में उनके दाह-संस्कार के समय का शोक-मिश्रित वातावरण, वह मर्मस्पर्शी मंज़र अभी भी हमारी आँखों के सामने है। उन्हें आख़िरी अलविदा कहने, अपनी अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए उमड़ी भारी भीड़ में पंजाब के तत्कालीन मुख्य मन्त्री ज्ञानी ज़ैल सिंह के अतिरिक्त अन्य कई जानी-मानी हस्तियाँ सम्मिलित थीं। आचार्य विश्वबन्धु जी समय के पटल पर अपने अमिट निशान छोड़ गए हैं और एक युग पुरुष हो गए हैं।

अब जब भी कभी साधु आश्रम जाना होता है, वहाँ संस्थान के मुख्य कार्यालय में एक छोटे से कमरे में बैठकर आचार्य जी के अधूरे रह गए लेखन, सम्पादन और प्रकाशन संबंधी कार्यों के निष्पादन में प्रो. इन्द्रदत्त जी उनियाल को तल्लीन देखता हूँ तो कवीन्द्र **रवीन्द्र नाथ टैगोर** की ये पंक्तियां सहसा स्मरण हो उठती हैं–

"Who is there to take up my duties?", asked the setting sun.

"I shall do whatever I can, my Master", said the earthen lamp.

अर्थात् डूबते सूर्य ने पूछा–''कौन है जो मेरा कार्य संभालेगा?''

माटी के दीप ने कहा–

''जो कर सकता हूँ, मैं करूँगा, मेरे मालिक!''

ख़ैर, संस्थान में कार्य चल रहा है, चलता रहेगा। यही जीवन है– चलते रहने का ही नाम ज़िन्दगी है। चरैवेति चरैवेति.........।

– ईशा निवास, शिव-शक्ति नगर, ऊना रोड़, होशियारपुर

सन्त साहित्य के विकास में सन्त मलूकदास का योगदान

– डॉ. महेश सिंह यादव

सन्त मलूकदास उच्च कोटि के महात्मा रहे हैं। इनका व्यक्तित्व अनोखा था, इनकी छवि निराली थी, इनका हृदय परोपकार से परिपूर्ण था। भारत की संत-परम्परा में मलूकदास का एक अद्वितीय स्थान है। फिर भी "संत मलूकदास इन संत कवियों में अलग से देदीप्यमान नक्षत्र की भाँति ध्यान आकर्षित करते हैं। उनकी विशिष्टता इस बात में है कि भारतीय अध्यात्म के जो तीन प्रसिद्ध सूत्र हैं- बादरायण का ब्रह्मसूत्र, नारद का भक्तिसूत्र और पतंजलि का योगसूत्र- इन तीनों सूत्रों का मलूक की वाणी में उनके दोहों, साखियों और पदों में मुखरित प्रकाश देखा जा सकता है। मनुष्य की प्राकृतिक ऊर्जा, अन्तर्निहित परमात्म शक्ति- इनकी प्राप्ति से भौतिक जीवन का सुधार यही महालक्ष्य है मलूक की वाणी का। यानी मानव के जीवन को सर्वांगरूप में अनुभूतिपूर्ण बनाना और सुधारना[1]।" मलूकदास की दृष्टि में पीर वही है जो दूसरों की पीड़ा को जानता है। जो दूसरों की पीड़ा को नहीं जानता, जो पर पीड़ा से द्रवित नहीं होता है, वह काफिर है-

मलूका सोई पीर है, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानहीं, सो काफिर बेपीर।।[2]

सन्त मलूकदास ने प्रेम को सर्वोपरि माना है। उनकी दृष्टि में प्रेम ही सब कुछ है। प्रेम के बिना व्यक्ति निर्वाण के पद तक नहीं पहुँच पाता है।[3] वे प्रेम के पुजारी थे उनका मानना था कि प्रेम के ही माध्यम से मनुष्य परमपद को प्राप्त करता है। प्रेम ही व्यक्ति को भवसागर से पार उतारता है। प्रेम की महिमा भगवान् ने स्वयं कही है। प्रेम की महिमा अपरम्पार है।[4]

संत शिरोमणि मलूकदास ने प्रेम को विशेष महत्व दिया है। प्रेम का प्रसंग सन्तों की परम्परा रही है। सभी सन्तों ने प्रेम को महत्व दिया है। कबीरदास ने भी '**ढाई अच्छर प्रेम का, पढ़ै सो पण्डित होय**'[5] पर विशेष बल दिया है। मलूकदास ने भी सन्तों की परम्परा का निर्वाह किया है और प्रेम को हृदयंगम किया है। उनका निर्देश है कि प्रेम का त्याग तब तक नहीं करना चाहिए, जब तक कि शरीर में प्राण हैं। प्रेम के ही माध्यम से भगवान् स्वयं आकर दर्शन देते हैं।[6]

कबीरदास ने भी प्रेम पर बल दिया है, उनकी दृष्टि में प्रेम उसी को मिलता है, जो अपना सिर काटकर अपने हाथ में ले लेते हैं। प्रेम सबके जीवन की वस्तु नहीं है, वह त्याग और समर्पण की पराकाष्ठा का प्रतिबिम्ब है।[7]

---

1. डॉ. बलदेव वंशी : सन्त मलूक ग्रन्थावली, पृष्ठ-6.
2. वही, पृष्ठ-7.
3. वही, पृष्ठ-34.
4. वही, पृष्ठ-34.
5. कबीर ग्रन्थावली, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी।
6. डॉ. बलदेव वंशी: सन्त मलूक ग्रन्थावली, पृष्ठ-4.
7. कबीर ग्रन्थावली, श्यामसुन्दरदास।

मलूकदास ने भी अन्य सन्तों की तरह सामाजिक मर्यादा पर विशेष बल दिया है तथा उन्होंने अन्य सन्तों की भाँति समाज में पाखण्ड, बिडम्बना, अन्धविश्वास, कुरीति आदि का जबरदस्त ढंग से विरोध किया है। इनका उद्देश्य भी अन्य सन्तों के समान समाज में व्याप्त बुराईयों को दूर कर समाज को उचित दृष्टि प्रदान करना रहा है। ये भी समाज के महान् शुभचिन्तकों एवं मनीषियों की श्रेणी में आते हैं। इनका उद्देश्य समाज को राम का गुणगान सिखाना है, यदि राम का गुणगान नहीं किया जाता है तो वहाँ पाखण्ड और अँधविश्वास अधिक होगा। जहाँ श्रीराम का गुणगान न हो, वहाँ पानी भी नहीं पीना चाहिए।[8]

मलूकदास ने लिखा है कि जहाँ-जहाँ बछड़ा फिरता है, वहाँ-वहाँ गाय पहुँच जाती है, जहाँ सन्तजन होते हैं, वहाँ अपने आप भगवान् पहुँच जाते हैं क्योंकि भगवान् भाव के भूखे होते हैं-

जहाँ-जहाँ बच्छा फिरै, तहाँ-तहाँ फिरै गाय।
कहैं मलूक जहाँ सन्तजन, तहाँ समैया जाय।।[9]

मलूकदास की दृष्टि में ईमानदारी अर्थात् आचरण की शुद्धता भी अति आवश्यक है। साहब उसी को अपना मानते हैं, जो इमान-धर्म पर टिका होता है, जिसका आचरण शुद्ध होता है।[10] मलूकदास ने माया को काली नागिन माना है-

माया काली नागिन,जिन डसिया सब संसार हो।
इन्द्र डसा,ब्रह्मा डसा,डसिया नारद व्यास हो।[11]

श्रीराम को ही मलूकदास ने सच्चा माना है। उनकी दृष्टि में वही सच्चा भक्त है, जो श्रीराम को जानता है-

साँचा तू गोपाल, साँचा तेरा नाम है
जहवा सुमिरन होय, धन्य सो ठाम है।
साँचा तेरा भक्त, जो तुमको जानता
तीन लोक की लाज, मनै नहि जानता।।[12]

मलूकदास ने गुरु को भी विशेष महत्व दिया है तथा उनका भी गान किया है-

हमारा सदगुरु विरलै जानै।
सुई के नाकें सुमेर चलावै,सो यह रूप बखानै।
की तो जानै दास कबीरा, की हरिनानक पूता।

× × × × × × ×

सोई शिष्य गुरू को प्यारा, सूखै नाव नचावै।
बिन पायन सब जग फिरि आवै, सो मेरा गुरू भाई।
कहैं मलूक ताकी बलिहारी,जिन यह जुगत बताई।।[13]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि सन्त मलूकदास उन सब प्रवृत्तियों से परिपूर्ण हैं, जो प्रवृत्तियाँ कबीरदास और सुन्दरदास में दिखायी देती हैं। इन्होंने समाज-सुधार की भरपूर कोशिश की है, इनका जीवन उच्च श्रेणी का है। इनके अवलम्ब निर्गुण श्रीराम हैं, जो रूप-रेख विहीन हैं, इनकी दृष्टि सर्वव्यापी है, ये सभी प्राणियों के प्रति दयाभाव रखते हैं, इनका जीवन त्याग एवं तपस्या की प्रतिमूर्ति है। इनका चरित्र ऊँचा है। इनके श्रीराम घट-घट में विद्यमान हैं। इन्होंने माया को कबीर की तरह ठगिनी माना है। इनके ऊपर कबीर का भरपूर प्रभाव है।

– प्रवक्ता : हिन्दी, आर. जी. एन. पी. कॉलेज, राजा का ताजपुर, बिजनौर।

8. डॉ. बलदेव वंशी, सन्त मलूक ग्रन्थावली, पृष्ठ-35.
9. वही, पृष्ठ-37.
10. वही, पृष्ठ-38.
11. वही, पृष्ठ-49.
12. वही, पृष्ठ-46.
13. वही, पृष्ठ-43.

महात्मा गाँधी : एक महान् सन्त

– डॉ. रीना तलवाड़

परदुःखे कातरता, महच्च धैर्यं स्वदुःखेषु।

गाँधी जी केवल राजनीतिक नेता ही नहीं थे, अपितु एक महान् संत भी थे। उन्होंने धर्म को राजनीति का अभिन्न अंग माना था। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में भारत की जनता पर जितना अधिक प्रभाव महात्मा गाँधी का रहा, उतना अन्य किसी नेता का नहीं रहा। भारत की राजनीति में उनके आगमन से पहले स्वाधीनता आन्दोलन केवल शहरों और उच्चशिक्षित लोगों तक ही सीमित था। गाँधी जी ने उसे गाँवों के करोड़ों अनपढ़ किसानों तक पहुंचाया और देश में एक ऐसी राजनीतिक चेतना जगा दी, जिसे किसी भी तरह देर तक दबाया नहीं जा सकता था।

गाँधी जी एक महापुरुष तो थे ही, साथ ही एक महान् सन्त भी थे। बायसराय लार्ड हैलिफैक्स का विचार था कि चरित्र और आचरण की शक्ति के द्वारा ही गाँधी जी ने अपनी पीढ़ी के विचारों पर गहरा भाव डाला, न कि नीति-वचनों या उपदेशों-निर्देशों द्वारा। गाँधी जी ने अंग्रजी-राज्य की संगठित शक्ति के मुकाबले पर अहिंसा और सत्य की पवित्र शक्ति ला कर खड़ा कर दी और उनकी जीत हुई थी। उन्होंने यह दावा किया कि उनका यह सिद्धान्त 'उतना ही पुराना है जितने की पर्वत।'

गाँधी जी की असाधारणता इसमें है कि उन्होंने सांसारिक विषयों में आध्यात्मिक मूल्यों और तकनीकों को लागू करने पर बल दिया। डॉ. फ्रांसिस नीलसन गांधी के विषय में कहते हैं- "गाँधी जी कर्म में डायोजीनिस, विनम्रता में सेंट फ्रांसिस और बुद्धिमानी में सुकरात थे" इन्हीं गुणों के बल पर गाँधी जी ने दुनियाँ के सामने उजागर कर दिया कि अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए ताकत का सहारा लेने वाले राजनेताओं के तरीके कितने अव्यावहारिक हैं। महात्मा जी ने यह सिद्ध किया कि राज्य की शक्तियों के भौतिक विरोध की तुलना में आध्यात्मिक सत्यनिष्ठा विजयी होती है।

महात्मा गाँधी जी ने अपने जीवन में स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए जिस शस्त्र का प्रयोग किया वह था- अंहिसा। अहिंसा का अर्थ है- **सचेतन कष्ट सहन।** अंहिसा का अर्थ बुराई करने वाले की इच्छा के समक्ष विनीत बनकर आत्मसमर्पण कर देना नहीं है, बल्कि, उसके विरुद्ध अपना पूरा आत्मबल लगा देना है। अहिंसा मनुष्य की प्रतिशोध लेने की भावना का सचेतन और जाना-बूझा संयमन है। जिस प्रकार से हिंसा पशुओं का नियम है। उसी प्रकार अहिंसा मानवों का नियम है। जिन ऋषियों ने हिंसा के बीच अहिंसा की खोज की, वे न्यूटन से अधिक प्रभावशाली थे। वे स्वयं वेलिंग्टन से भी बड़े योद्धा थे। शस्त्रों के प्रयोग का ज्ञान होने पर भी उन्होंने उसकी व्यर्थता को पहचाना और श्रांत संसार को बताया कि उनकी मुक्ति हिंसा में नहीं अपितु अहिंसा में है। अहिंसा

द्वारा ही सात्विक व स्थायी परिवर्तन संभव है। क्षमा द्वारा अहिंसा का अनुपालन होता है जो योगमय जीवन का प्रारम्भ है। योग के आठ अंगों में पहला अंग है यम। यम का पहला सूत्र है अहिंसा। क्षमा योग का ही प्रारम्भ नहीं अपितु मनुस्मृति के अनुसार धर्म का भी प्रमुख लक्षण है।[1]

गाँधी जी ने अपने लेख में लिखा है कि मैंने अहिंसा का पाठ अपनी पत्नी से पढ़ा, जब मैंने उसे अपनी इच्छा के सामने झुकाने की कोशिश की। एक ओर, मेरी इच्छा का दृढ़ प्रतिरोध और दूसरी ओर मेरी मूर्खता को चुपचाप सहने की उसकी पीड़ा को देखकर अंततः मुझे अपने ऊपर बड़ी लज्जा आई और मुझे अपनी इस मूर्खतापूर्ण धारणा से मुक्ति मिली कि मैं उस पर शासन करने के लिए ही पैदा हुआ हूं। अंत में, वह मेरी अहिंसा की शिक्षिका बन गई।

अहिंसा का आधार ईश्वर में आस्था है। ईश्वर ज्ञात और अज्ञात, सभी बलों से श्रेष्ठ बल है। उस परम बल के सहारे के बिना अहिंसा का कोई मूल्य नहीं। हम अहिंसा की जितनी सिद्धि करते जाते हैं, ईशतुल्य होते जाते हैं। गांधी जी की दृष्टि से सत्य अंहिसा का समानार्थक है। अहिंसा साधन है और सत्य साध्य है। अंहिसा का दृढ़ता के साथ आचरण अनिवार्यतः हमें सत्य तक ले जाता है, जो हिंसा के व्यवहार से सम्भव नहीं है। अहिंसा कायरता की आड़ नहीं है, बल्कि यह वीर का एक सर्वोच्च गुण है।

अहिंसा और सत्य का मार्ग तलवार की धार के समान तीक्ष्ण है पर अहिंसा के प्रहार से रक्त-पात न होकर केवल प्रहार किए गए व्यक्ति पर एक आघात मात्र है। अंहिसा के मार्ग का पहला नियम यह है कि हम अपने दैनिक जीवन में परस्पर सच्चाई, विनम्रता, सहिष्णुता, प्रेम, दयालुता का व्यवहार करें। अहिंसा का पथ अपरिवर्तनीय है। अहिंसा का पालन उस समय करना आवश्यक है जब चारों और हिंसा का नग्न ताण्डव नृत्य हो रहा हो।

गाँधी जी आजीवन सत्य के प्रयोग करने के बाद एक ऐसी स्थिति को प्राप्त हो गए थे। जहां उनके नैतिक निर्णय ठोस और सुनिश्चित होते थे। गाँधी जी सत्य, प्रेम और श्रम के नक्षत्रों से मार्गदर्शन ग्रहण करते थे। उनका कहना था आत्मशुद्धीकरण के लिए अथक प्रयास करते हुए मैंने अपनी अंतर्वाणी को सुनने की किंचित् क्षमता विकसित की है। उनकी अंतर्वाणी थी सत्य। वे जीवन में श्रम को भी बहुत महत्व देते थे। उनका विचार था कि यदि सब रोटी कमाने के लिए शारीरिक श्रम करें तो सभी को पर्याप्त भोजन और विश्राम मिल सकता है। तब हमारी आवश्यकताएं न्यूनतम रह जाएंगी और हमारा भोजन सादा हो जाएगा। तब हम जीने के लिए खाएंगे, खाने के लिए नहीं जिएंगे।

निर्दोष व्यक्ति का स्वेच्छया बलिदान धृष्ट क्रूरता का, ईश्वर या मनुष्य द्वारा अभी तक सोचा गया सबसे शक्तिशाली प्रतिकार है। सिक्खों के नवें गुरु तेगबहादुर जी ने कश्मीरी पण्डितों की रक्षा के लिए आत्मबलिदान दे दिया था। ईसा मसीह ने उन लोगों को भी क्षमा कर दिया जिन्होंने उन्हें सूली पर टांगा और ईसामसीह प्रभु बन गए।

---

1. मनुस्मृति, 2.

यदि आधुनिक मनुष्य अपनी स्वतंत्रता को मूल्यवान् समझता है तो सामूहिक संघर्ष को सुलझाने के लिए अहिंसा के शस्त्र को ही अपनाए ओर उसको ही पूर्णता प्रदान करे। अहिंसा ने चालीस करोड़ लोगों के शक्तिशाली राष्ट्र को बिना रक्तपात के आजादी दिलाई है। भारत की आजादी के परिणामस्वरूप ही बर्मा और लंका को भी आजादी हासिल हुई है। यदि भारत अपनी अहिंसक शक्ति का विकास नहीं करता तो भारत का सैन्यीकरण स्वयं उसका और सारी दुनिया का विनाश कर देगा।

गाँधी जी दृढ़तापूर्वक कहते थे कि यदि हम विशुद्ध अहिंसक प्रयास से अंग्रजों पर कामयाबी प्राप्त कर सकते हैं तो हम अन्य लोगों पर भी जरूर कर सकते हैं। अगर हम अहिंसा से आजादी हासिल कर सकते हैं तो अहिंसा से उसकी रक्षा भी कर सकते हैं। गाँधी जी को जहाँ केवल कायरता और हिंसा में से एक का चुनाव करना हो तो वहाँ वे हिंसा को चुनेंगे। कायर की भान्ति अपने अपमान का विवश साक्षी बनने की अपेक्षा भारत के लिए अपने सम्मान की रक्षा के लिए शस्त्र उठा लेना अधिक अच्छा समझेंगे। जब कोई व्यक्ति मरने के लिए पूरी तरह तैयार होगा तो शायद उसमें हिंसा पर उतारू होने की इच्छा ही न रहे।

गाँधी जी का अहिंसा का मार्ग विश्वशान्ति के लिए सबसे बड़ा उदाहरण प्रस्तुत करता है। आज भारत को शान्ति का मार्ग चुनने की आवश्यकता है। यद्यपि अपनी अधीर प्रकृति के कारण यह मार्ग लम्बा प्रतीत हो सकता है, पर वह होगा वस्तुतः सबसे छोटा ही। शान्ति के मार्ग से आंतरिक समृद्धि और स्थिरता भी सुनिश्चित होती है।

गाँधी जी का कथन है कि यद्यपि मैंने सुभाषचन्द्र बोस के हिंसा में विश्वास और उनके परिणामी कार्यों को स्वीकार नहीं किया, पर मैंने उनकी देशभक्ति, उपाय-कौशल और वीरता के लिए उनकी खुलकर प्रशंसा करने में संकोच भी नहीं किया है। वे किसी भी परिस्थिति में मारने, हत्या करने या आतंकवादी कारवाई करने को अच्छा नहीं मानते थे।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि विज्ञान के विकास के साथ-साथ तेजी से विश्वग्राम में परिणत होते विश्व में यदि अहिंसा जैसे नैतिक मूल्यों का समावेश किया जाए तो सभी प्राणी परस्पर निर्भय और सानन्द रह सकेंगे। अहिंसक राज्य में श्रमिकों और पूंजीपतियों के बीच झगड़े और हड़तालें कभी-कभार ही होंगे। साम्प्रदायिक दंगे, भ्रष्टाचार आदि जड़ से नष्ट हो जाएंगे। अपराधी और आतंकवादी के साथ जेल में रोगी जैसा व्यवहार होगा। जेल का कर्मचारी-वर्ग उनका मानसिक स्वास्थ्य पुनः प्राप्त कराने में मदद करेगा। प्रेम, दया, समानता, अहिंसा आदि नैतिक मूल्यों के विकसित होने से एक सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण होगा।

– शान्तिदेवी आर्य महिला महाविद्यालय, दीनानगर (पंजाब)।

स्त्री-शिक्षा के प्रति महर्षि दयानन्द का दृष्टिकोण

– डॉ. कर्मबीर सिंह सिहाग

भारतवर्ष प्राचीनकाल से ही ऋषियों तथा संन्यासियों की पवित्र भूमि रहा है। उन महान् संन्यासियों में महर्षि दयानन्द भी एक हैं। ऋषि दयानन्द ने जब इस नश्वर जगत् में जन्म लिया, उस समय समस्त आर्यवर्त की स्थिति अन्धकारमय थी। सम्पूर्ण राष्ट्र में अंधविश्वासों एवं आडम्बरों का वर्चस्व था। ऐसे समय में महर्षि दयानन्द ने गुरु विरजानन्द से शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् समग्र क्रान्ति का शंखनाद किया। उन्होंने अपने वेदानुकूल विचारों को समग्ररूपेण प्रकट करने के लिए अपनी अमरकृति सत्यार्थप्रकाश की रचना की। वे सत्यार्थप्रकाश की रचना का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि– 'मेरा इस ग्रन्थ को बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य अर्थ का प्रकाशन करना है अर्थात् जो सत्य है, उसको सत्य और जो मिथ्या है, उसको मिथ्या प्रतिपादन करना ही सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है।[1] वे और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं– ''इस ग्रन्थ में ऐसी कोई बात नहीं रखी है और न ही किसी का मन दुखाना, ना किसी की हानि का तात्पर्य है। किन्तु जिससे मनुष्यजाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्यजाति की उन्नति का कारण नहीं है।[2]

महर्षि दयानन्द का मानना था कि आधुनिक हिन्दूधर्म व समाज में जो कुरीतियां प्रविष्ट हो गई हैं, उनका मुख्य कारण सत्य-सनातन वैदिकधर्म की शिक्षाओं को भुला देना है। स्वामी दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में शिक्षा को बहुत अधिक महत्त्व दिया। उनके विचार में व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की उन्नति तथा सुख-समृद्धि उसी अवस्था में सम्भव है, जब सब स्त्री-पुरुष सुशिक्षित हों, सबको धर्म-अधर्म और कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का समुचित ज्ञान हो। विद्या और विज्ञान को सबके कल्याण के लिए प्रयुक्त किया जाए। उन्होंने स्त्री-शिक्षा पर विशेष बल दिया। उनके अनुसार स्त्री केवल वेद पढ़ने की अधिकारिणी ही नहीं है, अपितु उसको वेद की शिक्षा और उपदेश करने का भी पूर्ण अधिकार है। वेद को सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान का भण्डार मानते हुए स्वामी जी ने सभी को वेदाध्ययन का अधिकारी माना है।[3] महर्षि का मंतव्य है कि स्त्री को शिक्षा से वंचित रखना जीवन के संतुलित विकास में व्यवधान उपस्थित

1. सत्यार्थप्रकाश भूमिका।
2. वही, भूमिका।
3. वही, भूमिका।

करना है। उसका मानना है कि स्त्री और पुरुष में से एक के भी अशिक्षित रहने पर घर में सुख-शान्ति नहीं रह सकती।[4]

वेद में कहा गया है कि युवकों के समान ही युवती कन्या ब्रह्मचर्य सेवन एवं वेदादि शास्त्रों को पढ़कर पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा प्राप्त कर अपने सदृश विद्वान् और युवा पुरुष को प्राप्त हो- **'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्'**।[5] स्वामी जी की दृष्टि में नारी का कार्यक्षेत्र केवल घर तक सीमित नहीं है। इसीलिए स्त्रियों के न्यूनतम अध्ययनीय विषयों में व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्पविद्या आदि का परिगणन करते हैं।[6] उनके मतानुसार स्त्रियों को दो प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए- सामान्यशिक्षा एवं विशेषशिक्षा। सामान्यशिक्षा से उनका अभिप्राय पुरुषों के समान ही दी जाने वाली व्याकरण आदि की शिक्षा से है एवं विशेषशिक्षा वह है जो उन्हें गृहकार्य में दक्ष बनाए तथा सन्तान का भलीभांति पालन-पोषण करना एवं उन्हें अच्छे संस्कार देना सिखाए। वे स्त्रियों को वेदादि एवं धर्मशास्त्र आदि की शिक्षा देना इसलिए आवश्यक मानते थे कि जिससे वे ईश्वर एवं धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझ सकें एवं अधर्म से बच सकें तथा अपनी सन्तान में अच्छे संस्कारों का सूत्रपात कर सकें। उनका मानना था कि स्त्रियों को शिक्षित करने से उनका परिवार भी सुसंस्कृत बनेगा जिससे एक स्वस्थ एवं सुसंस्कृत समाज का निर्माण हो सकेगा। अत एव स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द स्त्रीशिक्षा के माध्यम से स्त्रियों के आत्मा, मन एवं शरीर का सर्वांगीण विकास करना चाहते थे, क्योंकि वे यह अच्छी तरह जानते थे कि स्त्रियों के विकास में ही समाज का विकास निहित है। इसीलिए उन्होंने स्त्री-शिक्षा का समर्थन किया और महिला सशक्तिकरण तथा उनके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक विकास का मार्ग सुनिश्चित किया। उन्होंने स्त्रियों को देश का निर्माता होने का गौरव प्रदान किया।

– असिस्टैंट प्रोफेसर संस्कृत, गवर्नमैंट कॉलेज, हाँसी (हिसार), हरियाणा।

4. सत्यार्थप्रकाश,तृतीय सभुल्लास, पृष्ठ 49.
5. अथर्ववेद, 3. 24. 11. 18.
6. सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास, पृष्ठ-128.

यज्ञ द्वारा समस्त रोगों का उपचार

–वैद्य श्री गजानन्द व्यास आयुर्वेदाचार्य

वर्तमान युग में नाना प्रकार के नित्य नवीन प्राणघातक असाध्य रोगों का प्रवाह प्रवाहित हो रहा है। इस प्रवाह से बचने के लिए संसार के वैज्ञानिकों द्वारा अथक परिश्रम किया जा रहा है ; कुछेक रोगों से बचने के लिए सूचीवेध (टीकाकरणों) के आविष्कार हुए हैं, पर ये निर्दोष नहीं हैं, इनसे रुग्णों के शरीर पर विपरीत प्रभाव भी पड़ता देखा जाता है।

यदि हम मुड़कर देखें तो ज्ञात होगा कि सृष्टि के आदि से लेकर अब तक हवन (यज्ञ) का प्रचार समस्त संसार में रह चुका है। भारत में वेदों, उपनिषदों, धर्मशास्त्रों व आयुर्वेद-शास्त्रों में स्थान-स्थान पर यज्ञ-चिकित्सा की महिमा का वर्णन मिलता है। कुछेक पाश्चात्य देशों के वैज्ञानिकों ने भी हवन-चिकित्सा के सिद्धान्तों को स्वीकारा है। यवन देशों के तत्त्ववेत्ता प्यूयकी ने अग्नि को वायु-शोधक माना है। जापान, चीन में होम को धोम कहते हैं, वे भी मन्दिरों में धूप जलातें है। पारसी लोगों के बारे में सभी जानते हैं कि ये अग्नि के उपासक हैं।

वर्तमान में हमारे देशवासियों की ऐसी मानसिकता बन गई है कि पाश्चात्य वैज्ञानिकों द्वारा जो कुछ भी भला-बुरा कहा जाता है उसे ही देववाणी समझ कर अन्धानुकरण करने में अपनी भलाई समझ बैठे हैं। अत: कुछेक पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने यज्ञ-चिकित्सा की सार्थकता समझते हुए अपने उद्‌गार प्रकट किये हैं। यथा ''विज्ञान का नियम है कि स्थूल की अपेक्षा सूक्ष्म अधिक शक्तिशाली होता है।'' यज्ञसामग्री अग्नि के स्पर्श से सूक्ष्मतम होकर हमारे शरीर में प्रविष्ट कर रोगों के सूक्ष्म-कीटाणुओं (वायरस,बैक्टीरिया) को नष्ट करती है। फ्रांस के रसायनवेत्ता मि. त्रिले ने सिद्ध किया कि लकड़ी जलाने से, 'फार्मिक आल्डीहाईड' नामक गैस निकलती है। जो हर प्रकार के सूक्ष्म से सूक्ष्म कृमियों (वायरस) को नष्ट करती है। वर्तमान में यह गैस बाजार में ''फार्मेलिन'' नाम से विक्रय होती है, जो मकानों को कृमिहीन करने में काम आती है। मि. त्रिले ने यह भी सिद्ध किया कि शक्कर जलाने से जो गैस निकलती है वह भी सूक्ष्म से सूक्ष्म रोग के कीटाणुओं को नष्ट करने में काम आती है। फ्रांस के ही प्रो. टिलबर्ट ने सिद्ध किया है कि खाण्ड जलाने से हैजा, तपेदिक, चेचक आदि के कीटाणु शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। प्रो. टाटलिट ने सिद्ध किया है कि मुनक्का, किशमिश आदि जलाने से आन्तरिक ज्वर (टाईफाईड) के कीटाणु आधे घण्टे में ही नष्ट हो जाते हैं। प्रो. हेमक्रिम ने सिद्ध

किया कपूर व घी जलाने से रोग के कृमि शीघ्र नष्ट होते हैं। वास्तव में जिन सिद्धान्तों को लाखों वर्ष पूर्व हमारे पूज्य ऋषियों ने प्रतिपादित किया था वे ही आज भी पाश्चात्य विज्ञान से भी सत्य सिद्ध हो रहे हैं।

यज्ञ एक वैज्ञानिक कृत्य है, समस्त कार्य उसकी सम्मति से होना चाहिए जो इस विज्ञान को समझता है। अत: यज्ञसामग्री द्वारा निकलने वाली गैस हमारे लिए नुकसान-कारक नहीं है। अपितु अन्न फलादि की अधिक उत्पत्ति में भी सहायक है। गीता में, भगवान् ने स्पष्ट किया है – सम्पूर्ण प्राणी अन्न से पैदा होते हैं, अन्न की उत्पत्ति वर्षा से होती है और वृष्टि यज्ञ से होती है।

कुछेक विद्वानों को यह भ्रान्ति हो रखी है कि कीटाणुवाद के प्रतिपादक पाश्चात्य वैज्ञानिक ही हैं, पर यह उनकी नासमझी है। अथर्ववेद, ऋग्वेद में सूक्ष्म से सूक्ष्म कृमियों का वर्णन किया गया है (अथर्व., 2.31.2)। दिखाई देने वाले और न दिखाई देने वाले (वायरस) कृमियों को नष्ट कर दिया है। इसी प्रकार क्षय रोगों के कीटाणुओं को नष्ट करने का वर्णन है- अ.का.3, सू.11 मं 1, का 3 सू. 11-मं.2.3.4, अ. का 7 सू. 76 मं. 3-4 आदि ऐसे ही चेचक, अपस्मार, कामला, उपदंश आदि अनेक रोगों के कीटाणुओं का वर्णन मिलता है। रोगों के कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए यज्ञ-चिकित्सा ही सर्वश्रेष्ठ उपाय बतलाते हुए नित्य हवन करने पर जोर दिया गया है। यदि कोई शंका करे कि आयुर्वेद का आधार त्रिदोषज है तो फिर कीटाणुवाद से इसका तादात्म्य कैसे ? यूँ तो ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में स्थान-स्थान पर कीटाणुओं से होने वाले रोगों का वर्णन मिलता है, जो अकाट्य व शाश्वत सत्य हैं। पर सामान्य ज्ञानानुसार वातादि धातुएँ जिस किसी कारण से विकृत हों तो दोषज हो जाते हैं, ये ही दोष आगे जाकर पाचनक्रिया को अनियमित कर कीटाणुओं की उत्पत्ति कराते हैं।

पदार्थ-विज्ञान का नियम है कि वस्तु का नितान्त अभाव नही होता, केवल आकार परिवर्तित होता है। अत: यज्ञ-अग्नि में डाले गये पदार्थ नष्ट नहीं होते, बल्कि औषधियों के परमाणु सूक्ष्म हो शक्तिशाली हो जाते हैं तथा वे सूक्ष्म परमाणु हमारे शरीर में श्वास द्वारा पहुँचकर अंगों को पुष्ट करते हैं तथा वहाँ स्थित कीटाणुओं को नष्ट करते हैं जैसा कि वेद भगवान् ने बतलाया है (अथर्व., 1.2.2.)

यहाँ संक्षेप से प्रत्येक रोग के निवारण के लिए किन-किन वस्तुओं को हवन-सामग्री के रूप में लिया जाना चाहिए, जैसा वर्णन मिलता है, संक्षेप से इस प्रकार है –

1. **मलेरिया नाशक सामग्री –**

क) गूगल, गिलोय, तुलसी के पत्ते, अतीस, जायफल, चिरायता प्रत्येक समभाग।

ख) पांडरी, शालपर्णी, ब्राह्मी, मकोय, गुलाब पुष्प, काकोली, लोंग, मुलहठी, हाऊबेर, कपूर, काकोणि, ऊद, अस्पंद, सहोड़ा छाल, अकरकरा प्रत्येक समभाग।

ग) देशी शक्कर 8 गुणा। घृत यथोचित मात्रा।

2. मधुमेहनाशक सामग्री –

क) हर्र बड़ी, गुठली रहित बहेड़, आंवला, तिल, गिलोय, श्वेत चंदन, बादाम, सुगन्धो को किला, जामुन की गुठली, गुड़मार, बेल के पत्ते, गूलर की छाल, शहद–समभाग।

ख) गूगल– 'क' भाग से दूगनी।

3. चर्मरोग नाशक सामग्री –

क) ब्राह्मी, सत्यानाशी, नीम के पत्ते, गिलोय, चिरायता, गंधक, कपूर, शहद–समभग।

ख) गूगल, सुगन्धबाला, हाऊबेर। 'क' भाग से दुगना ।

4. (श्वास) दमानाशक सामग्री –

क) त्रिफला, अगर, तगर, जटामांसी, यष्टी, मून्नका– 1 ग्राम।

ख) गूगल, गिलोय, बिसोहा, दुगुना।

ग) कपूर देशी आधा भाग, देशी शक्कर, 2.5 गुना।

5. संग्रहणी नाशक सामग्री –

क) सफेद जीरा, काला जीरा, बेल का गुदा, सोंठ, पीपल धनियां, सुगन्धबाला, नागर–मोथा, अजवायन, इन्द्रजौ, चिरायता, शालपर्णी, पृष्टपणी, गोखरु, लोंग, तेजपत्ता, हरड़, बहेड़ा, आँवला, छोटी इलायची, दालचीनी, नागकेशर, वंशलोचन, बादामगिरी, नारायणगिरी, छुहारा, शीतल चीनी, बड़ी इलायची, समभाग, 1 भाग।

ख) गुगल, पुराना गुड़ 4 गुणा।

ग) केशर–कपूर 1/8 भाग।

ऋतु अनुसार हवन सामग्री –

बसन्त ऋतु –

क) चिरायता, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, जायफल, कमलगट्टा, कपूर काचरी, इन्द्र जौ, शीतल चीनी, तालिसपत्र, तुलसीपत्र, अगर–तगर मजीठ, 1 भाग।

ख) धूप का बुरादा, देवदारु, गिलोय, मुनक्का, गुलर त्वक, सुगन्धबाला, हाऊबर–2 भाग।

ग) गुगल–देशी शक्कर 10 भाग।

घ) जावित्री 1/4 भाग–केशर 1/8 भाग।

ग्रीष्म ऋतु –

क) आँवला, जटामांसी, नागरमोथा, वायावि–डंग, धरीला, दालचीनी, लौंग, चन्दन द्वे, अगर, तगर, मजीठ, बड़ी इलायची, धूप बुरादा, तालिसपत्र, उन्नाव प्रत्येक 1 भाग।

ख) गुलाब पुष्प, चिरौंजी, शतावर, खस, गिलोय, सुपारी– दो भाग।

ग) गुग्गल– देशी शक्कर 10 भाग

घ) केशर 1/8 भाग।

वर्षा ऋतु –

क) काला अगर, इन्द्र जौ, धूप का बुरादा, तगर, तेजपत्र, बेल का गुदा, गिलोय, तुलसी, विडंग, नागकेशर, चिरायता।

ख) देवदारु, राल, खोपरा, जायफल, जटा–मांसी, वच, सफेद चन्दन, छुहारा, नीम के पत्ते, मकोय पंचाग, सुगन्ध कोकिला प्रत्येक 2 भाग।

ग) देशी शक्कर– 8 भाग, गुगल, 10 भाग

घ) छोटी इलायची, 1/2 ग्राम, केशर 1/8 भाग।

शरद् ऋतु –

क) चन्दन लाल, चन्दन श्वेत, नागकेशर, गिलोय, दालचीनी, पित्तपापड़ा, मोचरस, अगर, इन्द्र जौ, अश्वगंध, पत्रज, शीतल चीनी, तालमखाना, धान की खील प्रत्येक 1 भाग।

ख) गूग्गल, चन्दन पीला, चिरौंजी, गूलर की छाल, पीली सरसों, कपूर काचरी, जायफल, चिरायता, जटामांसी, सहदेवी 21/2 भाग।

ग) किशमिश 5 भाग, देशी शक्कर 8 भाग।

घ) केशर 1/2 भाग।

शिशिर ऋतु –

क) कपूर, विडंग, इलायची बड़ी, मुलहटी, मोचरस, गिलोय, तुलसी, चिरौंजी, काकड़ा सिंगी, शतावर, दारु हल्दी, पद्मभाख, सुपारी 1 भाग।

ख) अखरोट गिरी, मुनक्का, काले तिल, रक्तचन्दन, चिरायता, छुहारा, जटामांसी, तम्बारु, 21/2 भाग।

ग) गूगल 5 भाग, देशी शक्कर 8 भाग।

घ) रेणुका, शंखपुष्पी, कौंचबीज– 1/2 भाग।

हेमन्त ऋतु –

क) काली मूसली, पित्त पापड़ा, कूठ, गिलोय, दालचीनी, जावित्री, मुश्क, तालीसपत्र, तेजपत्र, श्वेत चन्दन, प्रत्येक एक भाग।

ख) देशी कपूर, कपूर काचरी, मुन्नका, अखरोट–मिंजी, काले तिल, खोपरा गोला, सुगन्ध कांकोली, हाऊबेर गुगल 10 भाग, देशी शक्कर 8 भाग, रास्ना 1/2 भाग केशर 21.8 ग्राम।

हवन के लिए समिधा के विषय में भी परामर्श दिया गया है कि अगर निम्नलिखित समिधा ली जायें तो कई गुणा फल मिलता है–

अर्क, पलाश, खादिर, अपामार्ग, अश्वत्थ (पीपल) औदुम्बर, शमी, दुर्वा, दर्भ, आम्र–बिल्व–चन्दनादि काष्ठ। स्वस्थ मनुष्य की स्वस्थता बनाये रखने के लिए दैनिक यज्ञकर्म में 100–500 आहूतियां दी जानी चाहिएं।

इस प्रकार यदि वैदिक साहित्य का अध्ययन किया जाये तो ऐसा कोई रोग नहीं जिसका उपचार वहाँ न प्राप्त हो। यदि प्राचीन ऋषियों के समान आधुनिक समाज में भी यज्ञाग्नि के प्रति निष्ठा तथा श्रद्धा हो तो ऐसा कभी नहीं हो सकता कि ऋषि ने किसी रोग को दूर करने के लिए कोई विधि या यज्ञ–सामग्री लिखी हो और कोई व्यक्ति श्रद्धापूर्वक, विधिपूर्वक यज्ञ को करे ओर रोग दूर न हो। बात केवल श्रद्धा विश्वास और विधि की है।

– आबू पर्वत (राज.)

चरकसंहिता में मीमांसा-दर्शन का व्यावहारिक स्वरूप

– श्री कमलेश कुमार

चरकसंहिता में सभी भारतीय आस्तिक दर्शनों की सामग्री उपलब्ध होने के कारण मीमांसा दर्शन की सामग्री भी पर्याप्त रूप से उपलब्ध होती है। चरकसंहिता में शरीर को आहार से उत्पन्न माना गया है।[1] यही चरकसंहिता का शरीर निर्माण-सम्बन्धी मुख्य सिद्धान्त है। शरीर-निर्माण में आहार का महत्त्व मीमांसा दर्शन के समान प्रातः सायं किये जाने वाले अग्निहोत्र के समान महत्त्वपूर्ण माना गया है। सायं और प्रातः सही समय पर ही अग्निहोत्रादि अनुष्ठान जिस प्रकार विधिपूर्वक किया जाता है, उसी प्रकार चरकसंहिता में भोजन-व्यवस्था का महत्त्व बताया गया है।[2]

मीमांसादर्शन का एक प्रधान विषय अर्थवाद भी है। अर्थवाद के अनुसार कर्म विधिपूर्वक हो तो उसकी प्रशंसा और विधि के प्रतिकूल हो तो उस की निन्दा करनी चाहिए।[3] चरकसंहिता में उपयोगी औषधि के प्रति रोगी की अरुचि होने पर अर्थवाद के अनुरूप उस औषधि की प्रशंसा करके रोगी की उस औषधि के प्रति रुचि पैदा करनी चाहिए। इसी प्रकार अनुपयोगी औषधि के प्रति निन्दा आदि करके उसके प्रति अरुचि भी पैदा करनी चाहिए। जैसे कोई माता-पिता अपने बालक को किसी कष्ट विशेष में गुडूची का क्वाथ पीने के लिए कहे, परन्तु गुडूची के प्रति उसकी अरुचि है तो उसे इस औषधि का उसके अनुकूल लाभ बताकर अथवा शर्करा आदि मिलाकर उसका सेवन कराना चाहिए।[4]

चरक ने मांगलिक कार्यों में होम का विधान किया है तथा दैव से सम्बन्धित विकारों के प्रशमन के लिए त्रिविध चिकित्सा भेद के अन्तर्गत 'दैवत्यपाश्रय' में इसका सन्निवेश किया है।[5] इन होमादि मांगलिक कार्यों में थूकना, नाक साफ करना निषिद्ध है।[6] विरेचन कराने से पूर्व व्यक्ति को होमादि मांगलिक कार्य अवश्य कर लेने चाहिए।[7] उन्माद रोग में भी मन की शुद्धि के लिए चिकित्सा की दृष्टि से होम अत्यावश्यक माना गया है।[8]

1. चरकसंहिता, सू. 28/41. 2. चरकसंहिता, सू. 27/345-347.
3. क. अभिधानेऽर्थवादः। मीमांसासूत्र, 1/ 2/ 46.
   ख. न्यायप्रकाश, अर्थवाद निरूपण, 5.
4. चरकसंहिता, चि. 29/121. 5. चरकसंहिता, सू. 11/54. 6. चरकसंहिता, 8/21.
7. चरकसंहिता, सू. 15/17. 8. चरकसंहिता, नि. 7/16, 9/93.

मीमांसादर्शन में मलिन वस्त्रों वाली 'रजस्वला' स्त्री को यज्ञशाला में जाने का निषेध[9] तथा रजस्वला स्त्री के हाथ का अन्न नहीं खाने का भी निर्देश है।[10] आयुर्वेदीय दृष्टि में ऐसा ही मान्य है। क्योंकि चरकसंहिता में इस प्रकार की स्त्री को तीन दिन तक अस्पृश्य रखने का निर्देश है।[11]

मीमांसादर्शन में द्रव्यों के उपयोग के विषय में कहा गया है कि उनमें पहले शोधन, क्षालन, पाचनादि के रूप में अनेक संस्कार करने पड़ते हैं। उन संस्कारों के करने के पश्चात् उनके विद्यमान गुण बदलकर रूपान्तरता को प्राप्त हो जाते हैं। यदि गुण और द्रव्य को एक ही पदार्थ मान लिया जाय तो यह वही द्रव्य है इस प्रकार के ज्ञान में अव्यवस्था हो जाएगी।[12] इस सूत्रार्थ से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रकरण भी चरकसंहिता के 7 संस्कार से गुण धर्म का परिवर्तन[13] के समान ही है।

चरकसंहिता में मीमांसा दर्शन के सिद्धान्तों के सामावेश से यह ज्ञात होता है कि होमादि मांगलिक कार्यों के करने से रोगी की मानसिक स्थिति पर अच्छा प्रभाव पड़ता है और होमादि करते समय यज्ञ में डाली जाने वाली औषधियों से हमारे वातावरण और मानव के शारीरिक तथा मानसिक स्थिति पर उत्तम प्रभाव पड़ता है। मीमांसादर्शन में हर कार्य को विधिपूर्वक करने का विधान है वही विधि औषधि निर्माण और सेवन में भी आवश्यक होती है। मीमांसादर्शन का होमादि कार्य प्रकृत्यानुकूल है और आयुर्वेद शास्त्र भी प्रकृति से अपनी औषधि और रोग निदान का कार्य सम्पन्न करता है। इन सभी बातों को ध्यान में रखने से यह जान पड़ता है कि चरकसंहिता में मीमांसा दर्शन का व्यवहारिक और रोग निदान में प्रयोग उपलब्ध होता है।

– शोध-छात्र, वी. वी. बी. आई. एस. एण्ड आई. एस. (पी. यू.),
साधु आश्रम, होशियारपुर।

---

9. प्रागपरोधान्मलवद् वासस:। मीमांसा सूत्र, 3/4/18.
10. अन्नपानप्रतिषेधाच्च॥ मीमांसा सूत्र, 3/ 4/ 19.
11. तत: पुष्पात् प्रभृति त्रिरात्रमासीत......॥ चरकसंहिता, शा. 8/ 5.
12. मीमांसा सूत्र, 3/ 1/ 16.
13. मीमांसा सूत्र, 27/ 272.

संस्थान-समाचार

पद्मभूषण स्व. आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु जयन्ती समारोह –

मंगलवार, 30-9-2014 को विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर में पद्मभूषण स्व. (डॉ.) विश्वबन्धु जी की जयन्ती-समारोह का आयोजन आर्य-समाज, साधु आश्रम के तत्त्वावधान में किया गया, जिसमें नगर के गणमान्य बुद्धिजीवियों, पंजाब विश्वविद्यालय पटल के प्राध्यापकों, छात्र-छात्राओं एवं संस्थान के सभी कर्मिष्ठों ने भाग लिया। इस समारोह के मुख्य-अतिथि सेवानिवृत्त प्रिंसिपल उमेश चन्द्र शर्मा थे तथा यज्ञ के यजमान प्रो. (डॉ.) प्रेमलाल शर्मा, चेयरमैन, पंजाब विश्वविद्यालय पटल थे।

सर्वप्रथम सत्संग मन्दिर में वेदमन्त्रों का पाठ तथा हवनयज्ञ किया गया। तदनन्तर संस्थान के संचालक प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल ने संस्थान के पूर्ववृत्त तथा वर्तमान गतिविधि पर प्रकाश डाला। तदनन्तर प्रो. कृष्णमुरारी ने आचार्य जी के साथ अपने अनुभवों को प्रकट करते हुए अपनी श्रद्धांजलि भेंट की। तत्पश्चात् प्रो. जयनारायण शर्मा ने आचार्य जी के पाण्डित्य तथा व्यक्तित्व एवं कार्य पर प्रकाश डालते हुए एवं उनके संस्मरणों को सुनाते हुए अपनी श्रद्धांजलि भेंट की। अनन्तर नगर के गणमान्य प्रसिद्ध समाजसेवी तथा छात्रवर्ग के हितैषी एवं अनेक विद्यालयों से सम्बन्धित श्री कुलदीपराय गुप्ता ने आचार्य विश्वबन्धु जी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए संस्थान द्वारा किए गए तथा किए जा रहे कार्यों की सराहना की तथा आचार्य विश्वबन्धु जी द्वारा संस्थान को विश्व पटल पर पहुँचाने के लिए अथक परिश्रम, लग्न एवं कार्यशैली की प्रशंसा की तथा उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की।

उसके बाद प्रो. प्रेमलाल शर्मा ने आचार्य जी द्वारा बताये कार्य को पूर्ण करने तथा संस्थान की उन्नति के लिए सहयोग की भावना प्रकट करते हुए उन्हें श्रद्धांजलि दी। अन्त में मुख्य अतिथि प्रिं. उमेश चन्द्र जी ने भी आचार्य जी के साथ समय-समय पर हुए अपने साक्षात्कारों तथा आचार्य जी की कार्यप्रणाली एवं विद्वत्ता की प्रशंसा करते हुए अपनी श्रद्धांजलि भेंट की।

अन्त में संस्थान संचालक प्रो. उनियाल द्वारा अभ्यागत प्राध्यापक वर्ग तथा दोनों संस्थानों के छात्र तथा छात्राओं का समारोह को सफल बनाने के लिए आभार और धन्यवाद प्रकट किया। स्वस्तिवाचन के बाद उपस्थित अतिथियों सहित परिसर में विद्यमान सभी कार्यालयीय व्यक्तियों ने प्रीतिभोज में भाग लिया।

दान–

प्रो. प्रेमलाल शर्मा, चेयरमैन, पंजाब विश्वविद्यालय पटल, साधुआश्रम, होशियारपुर। 3100/–

डॉ. शिव कुमार वर्मा, डिप्टी लाईब्रेरीयन, पंजाब विश्वविद्यालय पटल, साधुआश्रम, होशियारपुर। 500/–

श्री अश्वनी कुमार शर्मा, पं. वि. वि. पटल, साधु आश्रम, होशियारपुर। 500/–

श्री विद्या भूषण नैय्यर, गंगा निवास, मरवाहा मोहल्ला, होशियारपुर। 500/–

श्रीमती मीना मेहता, धर्मपत्नी स्व. डॉ. राजेन्द्र मेहता, राम नगर, होशियारपुर। 1100/–

प्रिं. उमेश चन्द्र शर्मा, ईशा निवास, शिवशक्ति नगर, ऊना रोड, होशियारपुर। 1000/–

प्रो. रघुवीर सिंह, पंजाब विश्वविद्यालय पटल, होशियारपुर। 1000/–

हवन-यज्ञ–

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से हुआ।

अक्तूबर, 2014 के द्वितीय रविवार को संस्थान के सत्संग-मन्दिर में परम पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के द्वारा चलाई गई परम्परानुसार उनके भक्तों के द्वारा अमृतवाणी का संकीर्तन भी नियमित रूप से किया गया।

वधाई –

संस्थान के संचालक प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल जी को गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय हिसार के गुरु जम्भेश्वर धार्मिक अध्ययन संस्थान द्वारा प्रकाशित तुलात्मक धर्मदर्शन पर आधारित **समराथल धारा** त्रैमासिक पत्रिका के सम्पादक-मण्डल का सदस्य बनाये जाने पर सभी की ओर से बहुत-बहुत वधाई।

संस्थान के कर्मिष्ठ श्री ओंकारनाथ के सुपुत्र श्री विजय कुमार का शुभ विवाह आयुष्मती दीपिका के साथ दिनाँक 29-9-2014 को अमृतसर में सम्पन्न हुआ। संस्थान के कर्मिष्ठ वर्ग की ओर से बहुत-बहुत बधाई।

संस्थान की कर्मिष्ठा श्रीमती नीलम को दिनांक 13-10-2014 को पुत्र रत्न की प्राप्ति पर संस्थान के कर्मिष्ठों की ओर से बहुत-बहुत बधाई।

शोक-समाचार –

संस्थान के कर्मिष्ठ श्री अशोक कुमार के छोटे भाई श्री धनीराम का दिनाँक 10-10-14 को अचानक हृदयगति रुक जाने से देहान्त हो गया।

शोकसंतप्त परिवार के प्रति संस्थान के कर्मिष्ठ वर्ग की ओर से हार्दिक समवेदना प्रकट की जाती है। परमपिता परमात्मा दिवंगत आत्मा को शान्ति एवं सद्गति प्रदान करें तथा उनके शोकाकुल परिवार को इस दुःख को सहने की शक्ति प्रदान करे।

विविध समाचार

परोपकारिणी सभा, अजमेर के तत्त्ववधान में 131वाँ ऋषि बलिदान समारोह (दिनाँक 31 अक्तूबर तथा 1-2 नवम्बर, शुक्र, शनि, रविवार) –

महापुरुषों का यज्ञमय जीवन हमको प्रत्येक कदम पर प्रेरणा व मार्गदर्शन देता रहता है। जिस कारण हम उनके ऋणी हो जाते हैं। इस ऋण से मुक्त होने का एक ही उपाय है– महापुरुषों की विचारधारा का यथासामर्थ्य प्रचार-प्रसार। विराट व्यक्तित्व महर्षि दयानन्द की समग्र मानवजाति ऋणी है। इस ऋण को चुकाने का स्वर्ण-अवसर ऋषि के 131वें बलिदान वर्ष के उपलक्ष्य में हमको प्राप्त हुआ है। इस अवसर पर परोपकारिणी सभा भव्य समारोह का आयोजन करने जा रही है, जिसमें ऋग्वेद पारायण यज्ञ, वेदगोष्ठी, चतुर्वेद कण्ठस्थीकरण वेद प्रतियोगिता एवं सम्मान किये जायेंगे।

इस समारोह हेतु आपका आर्थिक सहयोग आयकर की धारा '80-जी' के अन्तर्गत दिए गये प्रावधान के अनुरूप करमुक्त होगा। विदेश में निवास कर रहे धर्मप्रेमी सज्जन स्वदेश में होने वाले इस समारोह हेतु मुक्तहस्त से दान देकर देश का गौरव बढ़ाएँ। सभा को भारतीय शासन द्वारा विदेशों से दानस्वरूप दी गई राशि को प्राप्त करने की छूट प्राप्त है। आपका सहयोग ही हमारा सम्बल है। शुभकामनाओं सहित।

गजानन्द आर्य	**धर्मवीर**	**ओममुनि**
प्रधान	कार्यकारी प्रधान	मन्त्री

(परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित) योग-साधना शिविर (प्राथमिक व द्वितीय स्तर) दिनाँक : 12 से 19 अक्तूबर, 2014 –

आज समाज के अनेक क्षेत्रों में अनेक प्रकार से लोग साधना के लिए प्रयासरत हो रहे हैं। अनेक प्रशिक्षकों द्वारा इस विषयक ज्ञान-विज्ञान भी प्रदान किया जा रहा है। फिर भी साधकों को साधना की सन्तुष्टिदायक स्थिति प्राप्त नहीं हो पा रही है। इसका कारण है कि साधना के विषय साध्य, साधन, साधक व अन्य साधकों-बाधकों के ज्ञान का वैदिक परम्परा से दूर होना। इस योग-साधना शिविर में इन्हीं विषयों का वैदिक-दर्शनों के द्वारा ज्ञान करवाया जायेगा, उससे सम्बन्धित जिज्ञासाओं का समाधान व आत्मनिरीक्षण के द्वारा अपनी उन्नति का मापदण्ड बताया जायेगा। यह शिविर अवश्य ही आपकी साधना की उन्नति में विशेष साधन बनेगा, जिससे कि मानव जीवन के मुख्य व चरम लक्ष्य की प्राप्ति उत्तरोत्तर काल में आप अपने निकट अनुभव करने लगेंगे। यह शिविर **परोपकारिणी सभा, अजमेर** के सौजन्य से आयोजित किया गया।

– मन्त्री, परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥
(नीतिशतक, 84)

धीर पुरुष (धैर्यवान् व्यक्ति) अपने उचित कर्तव्यरूपी मार्ग से कभी भी अपना पग पीछे नहीं हटाते, इसके लिए चाहे नीतिनिपुण लोग उनकी निन्दा करें या प्रशंसा, चाहे धनरूपी लक्ष्मी उनके पास आए या फिर उनके पास से चली जाए और चाहे उनकी मृत्यु आज ही हो जाए या युगों के बाद।

निस्स्वार्थ समाज-सेवी एवं असहायों के सहायक

स्व. पूज्य पति डॉ. राजेन्द्रपाल जी मेहता

की प्रथम बरसी पर जो कि **6 नवम्बर, 2014** को है।

उनकी सदापर्णी स्मृति में सादर समर्पित -

श्रीमती मीना मेहता (धर्मपत्नी)

रामनगर, होश्यारपुर।

स जातो येन जातेन याति वंशसमुन्नतिम्।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते॥

(नीतिशतक, 32)

इस संसार में उसी व्यक्ति को उत्पन्न हुआ मानना चाहिए, जिसके उत्पन्न होने से उसके वंश की उन्नति होती है, वरन् इस परिवर्तनशील संसार में मृत्यु और जन्म का चक्कर तो चलता ही रहता है।

परम प्रिय बन्धु एवं निकटस्थ सम्बन्धी

स्व. डॉ. राजेन्द्रपाल जी मेहता

की

पुण्य स्मृति में

समर्पित

प्रयोजक :

प्रिं. उमेश चन्द्र शर्मा (पी. ई. एस. (I) रिटा.)

ईशा निवास, शिव-शक्ति नगर, ऊना रोड़, होशियारपुर।

संस्कृत-प्रतिष्ठानों, विद्यालयों, महाविद्यालयों, संस्कृतानुरागियों तथा संस्कृतज्ञों के लिए यह परम हर्ष का विषय है कि भारत सरकार (भारत शासन) ने संस्कृत के प्रति अपनी सम्मान की भावना दिखाते हुए ज्ञानपीठ पुरस्कार सम्मानित, पद्मभूषण राष्ट्रपतिसम्मान-प्राप्त संस्कृत के ख्यातिप्राप्त विद्वान् प्रो. सत्यव्रत शास्त्री की अध्यक्षता में संस्कृत-आयोग गठित किया है। आयोग ने संस्कृत की वर्तमान स्थिति तथा भविष्य के विषय में एवं उसके ह्रास या विकास के विषय में वास्तविकता जानने के लिए एक प्रश्नावली (प्रपत्र) प्रकाशित कर संस्कृत-विद्वानों के पास उनके विचारों को जानने के लिए भेजी है। आयोग के अध्यक्ष के निर्देशानुसार प्रश्नावली की प्रतिलिपि को विश्वज्योति में छापा जा रहा है; जिससे अधिक से अधिक संस्थाओं तथा पाठकों को यह जानकारी हो और वे अपने विचार उन्हें भेज सकें। आशा है कि संस्कृत-प्रेमी इस संबंध में अपने विचार संस्कृत-आयोग के अध्यक्ष-महोदय को भेज सकेंगे।

भवदीय

इन्द्रदत्त उनियाल

संचालक, वी. वी. आर. आई., साधु आश्रम, होशियारपुर।

द्वितीयसंस्कृतायोगः – 2014

भारतशासनम्

अभिप्रायनिवेदनम् लब्धप्रतिष्ठसंस्कृतविदुषां कृते
(कृपया अन्विता विषयास्समाधेयाः)

I. व्यक्तिगत-विषया :-

I. नाम

II. वर्तमानं पदम् (सेवायामस्ति चेत्)

III. अतीतं पदम् (सेवायां नास्ति चेत्)

IV. आवाससङ्केतः (Address)

V. स्थिरदूरवाणी (Landline Phone)

VI. जङ्गमदूरवाणी (Mobile)

VII. विद्युत्वार्त्ता (E-mail)

II. सामान्यविषया :-

a) संस्कृतानुष्ठानानां/संस्थानानां प्राथमिकलक्ष्यं किं भवितुमर्हति ?

b) किं भवद्दृष्ट्या अधुना संस्कृतानुष्ठानानि एतल्लक्ष्यं साधयितुं समर्थानि? कृपया एतेषाम् अनुष्ठानानां कार्यशैल्यां किमपि परिवर्तनमावश्यकं चेत् सूचयन्तु।

c) किं भवदीयानुष्ठान (संस्था) कार्यशैल्यां किमपि परिवर्तनं प्रस्तोतुमभिलषन्ति भवन्तः/भवत्यः?

d) संस्कृतक्षेत्रं प्रति भवदनुष्ठानयोगदानविषये भवदभिप्रायः। इतोऽपि किमधिकमधिगन्तुमभिलषन्ति भवन्तो/ भवत्यः किमप्यन्यत् साधयितुं वा वाञ्छन्ति ?

e) भवत्प्रतिष्ठानस्य बलं - दौर्बल्यम् - पुरोगामिमार्गः - सम्भाविताऽऽपदः।

f) स्नातकच्छात्राणां वृत्ति (उद्योग/नियुक्ति) प्राप्त्युपायवर्धनेऽपेक्षिताः सूचनाः।

g) भवन्मते साम्प्रतं संस्कृतस्य लोकप्रियतायाः अभिवर्धने आकाशवाण्याः, दूरदर्शनस्य, गणमाध्यमस्य पात्रं (कार्यशैली) कथमस्ति ? 1. किं भवद्दृष्टौ अधुना दूरदर्शने वार्त्ताप्रसारादि-कार्यक्रमाः तत्समयाश्च पर्याप्ताः ? तत्र संस्कृतनाटकं, चर्चासभा, प्रामाणिकचलचित्रं तथा कविसम्मेलनमित्यादीनां कार्यक्रमाणां योजनमावश्यकमिति किं चिन्तयन्ति भवन्तः/भवत्यः ?

h) किं प्रसिद्धसंस्कृतग्रन्थानवलम्ब्य बालानामुपयोगाय कार्टून् (पुत्तलिका) निर्माणं करणीयम् ?

i) किं संस्कृतं पिपठिषतां सामान्यजनानां कृते भवत्संस्थायाः बहिः समीपप्रान्ते अध्ययनाय केऽपि अवकाशाः / उपायाः उपलभ्यन्ते ?

j) किं भवतां राज्यसर्वकारः संस्कृतस्य विकासाय समुचिताम् आसक्तिं वहति ? कृपया सोदाहरणम् उपस्थापयन्तु ।

k) किं भवद्राज्ये व्यक्तिगतसंस्थाः, धार्मिकसंस्थाः उद्योगसंस्थास्तथा सर्वकारेतरसंस्थाः संस्कृतस्य विकासाय श्रद्धां वहन्ति ? पत्रसङ्केतेन साकं तेषां नामानि कृपया सूचयन्तु ।

l) अद्यतनभूतकाले संस्कृताभिवृद्धये प्रयतमानायाः संस्थायाः पिधानमभवच्चेत् तद्विवरणं कारणानि च कृपया विशदीकुर्वन्तु ।

m) भवन्मते किं भारतीयविश्वविद्यालयात्लब्धोपाधिः कश्चित् स्नातकच्छात्रः स्नात्तकोत्तरच्छात्रो वा पर्याप्तं संस्कृत-संस्कृतिज्ञानं वहति ?

n) भारतीयशिक्षासंस्थातः प्राचीनभारतीयेतिहासे, पुरातत्त्वविभागे, समाजविज्ञाने, अर्थशास्त्रे, हिन्द्यां, विधिशास्त्रे, दर्शनेषु, इतरविभागे वा अधीत्य समुत्तीर्णः स्नात्तकोत्तरः छात्रः स्वशास्त्रं सम्यग् अवगन्तुं संस्कृतशिक्षणमपि प्राप्नुयादित्यत्र को भवदभिप्रायः ? तदर्थं कीदृशं परिवर्तनं तच्छिक्षासंस्थानेषु कर्तव्यम्?

o) संस्कृतस्य विकासाय कश्चिद् जनस्वार्थाभियोगः(PIL) कृत इति भवदभिज्ञा चेत् कृपया तद्विवरणं दीयताम्।

p) राष्ट्रियैकताम् इतोऽपि द्रढयितुं संस्कृताध्ययनमुपकरोतीत्यत्र कथं भवच्चिन्तनम्?

q) किं भवद्दृष्टौ संस्कृताध्ययनं क्षेत्रीयभाषाणां साहित्यस्य वाङ्मयस्य च विकासाय उपकारकं भवेत्?

r) भवन्मतानुसारेण भारतस्य विभिन्नेषु प्रान्तेषु संस्कृतविश्वविद्यालयानां संस्थापनया किं संस्कृतविकासरूपं लक्ष्यं साधितम्? कृपया स्वराज्ये प्रान्ते वा विद्यमानां स्थितिं विशदीकुर्वन्तु।

s) किं भवन्तः/भवत्यः विविधराज्येषु संस्कृतअकादमी इति प्रतिष्ठानानां स्थापनम् संस्कृतस्य उपकारि इति मन्यन्ते?

   i) भवद्राज्ये संस्कृतअकादेमी इति प्रतिष्ठानस्य स्थितिं विशदयन्तु।

   ii) भवन्तः/भवत्यः किं संस्कृत अकादमीद्वारा अर्थशास्त्रनाट्यशास्त्रादिमूलग्रन्थानां तत् तत् प्रान्तभाषानुवादमुद्रणं कर्तव्यमिति मन्यन्ते?

   iii) संस्कृतअकादमीद्वारा सम्प्रति क्रियमाणकार्यजातापेक्षया अतिरिक्तानि कान्यपि कार्याणि सूचयितुम् इच्छन्ति भवन्तः/भवत्यः?

t) आधुनिकपद्धत्या संस्कृते स्नातकोत्तरोपाधिभाजां कृते पर्याप्ततया वृत्त्यवकाशः (उद्योगप्राप्त्यवकाशः) वर्तते इति भवन्तो/भवत्यश्चिन्तयन्ति ? यदि न, एतत् समस्यां दूरीकर्तुं भवन्तः/भवत्यः कान् उपायान् सूचयिष्यन्ति।

u) प्राचीनपद्धत्या एव केवलम् अध्येतुं संस्कृतशिक्षणसंस्थानां स्थापनाया आवश्यकता अस्तीति भवन्तः/भवत्यः चिन्तयन्ति ?

v) शास्त्री–आचार्यप्रभूत्युपाध्यन्तर्गततया संस्कृतं प्राचीनपद्धत्या अधीत्य स्नातकोत्तरोपाधिं प्राप्तवतां छात्राणाम् कृते उद्योगावकाशाः पर्याप्तमात्रया लभ्यन्त इति भवन्तः/भवत्यः मन्यन्ते ? यदि न, एनां समस्यां समाधातुं भवन्तः/भवत्यः कान् उपायान् सूचयिष्यन्ति।

w) अद्यतनसमाजे साधारण्येन सत्यसन्धता–नैतिकतादीनां मूल्यानां ह्रासः दरीदृश्यते। संस्कृतवाङ्मयान्तर्गतसच्चरित्रबोधकसुभाषितहितोपदेशादिपुस्तकानां पठनं समाजे पूर्ववत् ऋजुस्थितिप्राप्तये सहकारि भवेदिति चिन्तयन्ति भवन्तः/भवत्यः?

x) अद्यापि संस्कृताध्ययनम् अन्वर्थमिति तच्च प्रोत्साहनमर्हति इति भवन्तः/ भवत्यश्चिन्तयन्ति ? तथा चेत् संस्कृतस्य उपयुक्ततां/ प्रासङ्गिकतां/ अन्वर्थतां क्षेत्रीयसमाजे देशे प्रपञ्चे च वर्धयितुं मार्गान् निर्दिशन्तु।

III. शैक्षिकविषया :-

a) भवच्छिक्षणालये प्रविविक्षूणां छात्राणां संख्या सन्तोषजनिका अस्ति ? यदि न, तत्र कानि मुख्यानि कारणानि ?

b) भवद्विद्यालये/विभागे छात्रप्रवेशसंख्यावर्धनाय के उपायाः सूच्यन्ते ?

c) संस्कृताध्ययनार्थं भवदनुष्ठाने/विभागे प्रविष्टानां छात्राणां गुणवत्तां दृष्ट्वा किं भवन्तः/भवत्यः सन्तुष्टाः ?

d) अद्यत्वे भारतवर्षे प्रतिप्रान्तं माध्यमिकस्तरे (10 मकक्षापर्यन्त्) संस्कृतशिक्षा अनिवार्यरूपेण नास्ति। किम् एतस्य विपरीतप्रभावः भारते संस्कृतशिक्षायां पतति इति भवन्तो/ भवत्यश्चिन्तयन्ति? यद्येवं, दशमकक्षापर्यन्तम् अनिवार्यसंस्कृत-शिक्षायै कान् उपायान् भवन्तः/ भवत्यः प्रस्तोतुमिच्छन्ति।

e) ५ मकक्षातः १० मकक्षापर्यन्तं संस्कृतशिक्षा अनिवार्या भवेत् किम् ? किं प्राथमिकशिक्षायां १म तः ५ मकक्षापर्यन्तं प्रसिद्धसंस्कृतपद्यानां कण्ठस्थीकरणमपेक्षितमस्ति ?

f) किं भवदनुष्ठाने संस्कृतशिक्षायै 1. मानवसम्बलस्य, 2. भवनादिसामग्र्याः, 3. धनसं-साधनानाञ्च पर्याप्तव्यवस्था वर्तते ?

g) किं विविधसर्वकारीयसंस्थाभिः माध्यमिकविद्यालयस्तरे पठनार्थं प्रस्तुतानां पाठ्यपुस्तकानां विषयेऽस्ति सन्तोषः ?

h) किम् आङ्ग्लहिन्दीभाषाप्रभृतिसंस्कृतेतरविषयाणां स्नातकोत्तरस्तराध्ययने उपयुक्तसंस्कृत-ग्रन्थानाम् अध्ययनमपि संयोजनीयम् ? एवमेव आधुनिकगणित-लोहशास्त्रादीनामध्ययनेऽपि तत् तत् सम्बद्धसंस्कृतपाठ्यांशानां योजनं कार्यम् ?

i) आधुनिकविज्ञानाध्ययनव्यवस्थायां संस्कृतं तदन्तर्गतविज्ञानपाठ्यांशानां सम्मेलनाय भवदीय-सूचनाः काः सन्ति ?

j) पारम्परिकविद्यालयेषु प्राचीनपद्धत्या संस्कृताध्ययनं तथैव आधुनिकपद्धत्या आधुनिक-विद्यालयेषु संस्कृताध्ययनम् इत्यनयोर्मध्ये कतरत् छात्राणां कृते आकर्षकमस्ति ? भवत्प्रान्ते छात्राः किम् उभयमपि उपाधिं-आचार्य एवं एम्.ए. प्राप्तुम् उत्सुकाः सन्ति ?

k) किं भवन्तः/भवत्यः प्राचीनाधुनिकशिक्षापद्धत्योः सम्मेलनं वाञ्छन्ति ?

l) संस्कृतविश्वविद्यालयेभ्यः पारम्परिकसंस्कृतशिक्षणपद्धत्या समुत्तीर्णानां छात्राणां जीविकानिर्वाहार्थं कीदृशाः अवकाशाः सन्ति ? एते छात्राः सम्बद्धेषु विषयान्तरेषु अपि शिक्षिताश्चेत् तेषाम् उद्योगप्राप्त्यवकाशः वर्द्धते किमु ? कृपया भवदीयां सूचनां प्रयच्छन्तु।

i. किं विषयांतरेषु लघुपाठ्यप्रणाल्यः सञ्चालयितुं शक्यन्ते ?
ii. किं गणकयन्त्रोपयोगिविषयान्तरेष्वपि पाठ्यप्रणालीनां सञ्चालनमावश्यकम् ?

m) विश्वविद्यालयेभ्यः कलाशालाभ्यश्च आधुनिकसंस्कृतशिक्षणधारायां समुत्तीर्णानां छात्राणां जीविकानिर्वाहार्थं भवन्मते के मार्गाः भवेयुः ? किं भवन्तः/भवत्यश्चिन्तयन्ति यदेते छात्राः समुचित-उद्योगप्राप्त्यर्थं मुख्यशिक्षणं द्रढयितुं पुनः विषयान्तरेषु प्रशिक्षिताः भवेयुः। स्वाभिमतमत्रोपस्थापयन्तु।

n) यदि भवदनुष्ठानं पारम्परिकसंस्कृतशिक्षाप्रदानं करोति? तत्र कानि शास्त्राणि अध्येतुं छात्राः न उत्सहन्ते ?

o) भवदृष्ट्या किं पारम्परिकविद्यालयेषु आधुनिकविद्यालयेषु वा ये संस्कृतशिक्षकाः सन्ति तेषां सामान्यव्यावहारिक-समाजविज्ञानसम्बन्धिज्ञानं च पर्याप्तमस्ति ? संस्कृतसाहित्ये संनिविष्टस्य भावस्य समुचितव्याख्यानार्थं तेषां कृते एतादृशज्ञानं नितरामपेक्षितमिति किं भवन्तो/भवत्यश्चिन्तयन्ति ?

IV. अनुसन्धानं प्रकाशनञ्च –

a) भवन्मतानुसारेण भारते शोधच्छात्रैः प्रस्तुतानां शोधप्रबन्धानां मानं (स्तरः) कथं वर्तते?
i. यदि मानपरिरक्षणे ह्रासः तत्र मुख्यं कारणं किम् ?

ii. शोधकार्यस्य मानोन्नतये (गुणवत्तावर्धने) काश्चेष्टा: आवश्यकक्या: ?

iii. भवद्दृष्ट्या साम्प्रतिकसमये भारते संस्कृतशास्त्राणां केषु शास्त्रेषु शोधनिमित्तं विशेषदृष्टि: नैव दीयते ?

b) किं संस्कृतग्रन्थान् अधिकृत्य विज्ञाने सांकेतिकविद्यायां च कश्चित् शोधकार्यविशेष: प्रवर्तते ?

i. यदि नास्ति तर्हि तदर्थं प्रमुखकारणानि कानि ?

ii. संस्कृतवाङ्मये विद्यमानानां विज्ञानशास्त्रयान्त्रिकशास्त्र (Science Technology) सम्बद्धानां विषयाणाम् अनुसन्धानाय केन्द्रसर्वकारप्रोत्साहितम् अनुसन्धानक्षेत्रम् आवश्यकमिति विषये को भवदभिप्राय: ?

iii. तथा चेत् तस्य अनुसन्धानकेन्द्रस्य स्वरूपं कीदृक् भवेत् ?

c) प्राक्तनकाले गवेषका: स्वप्रधानक्षेत्रसम्बद्धेषु विषयान्तरेष्वपि आसक्ता: आसन्। सम्प्रति सा स्थिति: न दृश्यते। किं तत्तद्विश्वविद्यालयान्तर्गतसंस्कृत-विभागेषु/प्रतिष्ठानेषु वा अनुसन्धानं चिकीर्षव: अर्थशास्त्रं, राजनीतिशास्त्रं, समाजशास्त्रं, आधुनिकधर्मशास्त्रं, युद्धतन्त्रम् इत्यादिष्वपि विषयेषु प्रवर्त्तेरन् ?

d) भवदनुष्ठानस्य विभागस्य वा ग्रन्थालय: कथं वर्तते ? किम् आवश्यकानि पुस्तकानि ग्रन्थालये क्रेतुं शक्यन्ते ?

e) आधुनिकभारतीयवैदेशिकगवेषकाणाम् अनुसन्धानस्य फलांशान् प्राचीनपण्डितान् सामान्यजनान् च प्रापयितुं के उपाया: सन्ति ?

f) अद्यत्वे संस्कृतग्रन्थानां विमर्शनात्मकसंस्करणानां सम्पादने विद्यमाना स्थितिः भवत्सन्तोषं जनयति न वा ?

g) बहुषु विश्वविद्यालयेषु अनुष्ठानेषु च पुस्तकानां पत्रिकाणां च प्रकाशनं भवति। तत्तत्प्रकाशनानां गुण-मानयोः स्तरः कथं वर्तते ?

h) किं संस्कृतान्तर्गतशास्त्रेषु अन्तर्जालपुस्तकानि प्रोत्साहनीयानि? यदि तथाऽस्ति तर्हि किं सर्वकारेण संस्कृतनिघण्टु-प्रभृतीनि अन्तर्जालपुस्तकानि समुचितमूल्येन उपलब्धानि करणीयानि ?

i) अधुना बहवः संस्कृतग्रन्थाः यन्त्रारोपिताः। तेषाम् उपयोगः किं भवत्प्रतिष्ठाने क्रियते?

j) किं भवदनुष्ठानस्य अध्यापकाः कार्यालयीयजनाश्च संगणकव्यवहारे निपुणाः? किं केन्द्रियसमवायैः संस्कृते संगणकस्य व्यवहारविषये प्रशिक्षणं दातव्यम् ?

V. संस्कृतशिक्षायाम् अनुष्ठानं तथा प्रशासनम्

a) प्रथमसंस्कृतायोगस्य एकं प्रमुखं मतमासीत् यत् प्रतिराज्यं संस्कृतशिक्षानिमित्तं स्वतन्त्र-निदेशालयः राज्यप्रशासनाधीनो भवतु इति। किं भवद्राज्यम् एनां सूचनां परिपालयति ?

b) भारतदेशे संस्कृताध्यनस्य अनुसन्धानस्य च वर्धनाय राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानेन इतोपि काः अन्याः परियोजनाः आरब्धव्याः ?

c) किं भारते विभिन्नप्रान्तेषु आयोजितेषु चर्चासत्र-सम्मेलन-सङ्गोष्ठी-कार्यशालादिषु च उन्नतमानं परिलक्ष्यते येन संस्कृतशिक्षाया: शोधकार्यस्य च गुणवत्ताया: विकासो जायते। भवदनुष्ठाने किं पुन: पुन: चर्चासत्र-सम्मेलन-सङ्गोष्ठी-कार्यशालादिनां च आयोजनं भवति।

d) किं भवदनुष्ठानस्य विभागस्य वा कार्यशैल्या वात्मपरीक्षार्थं काऽपि व्यवस्था अस्ति?

e) किं यथा पाश्चात्यदेशेषु तथा अस्मद्देशेऽपि अनुसन्धानविधे: संवर्द्धनाय पूर्वरङ्गरूपेण शोधविषयाणां विशेषज्ञ-परामर्श: आवश्यक: ? किं तेषां सञ्चिकासु प्रकाशनम् आवश्यकम् ?

एतदतिरिक्तं किमपि भवन्तः सूचनाविमर्शरूपेण संस्कृतायोगं ज्ञपयितुमिच्छन्ति? (यदि अपेक्षितमतिरिक्तपत्रं योजयन्तु)

स्थानम् - स्वाक्षरम् -

दिनाङ्कः - नाम -

पदम् -

पत्रप्रेषणस्य संकेतः –

संस्कृत-आयोग,

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

56-57 ,इन्स्टीट्यूशनल् एरिया, जनकपुरी, नवदेहली-110 058

E-mail – 2ndsanskritcommission@gmail.com

Ph.: 011-28525101, 011-28524993, 011-28521994 Ext.-207

(संस्थान) सत्संग मन्दिर

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-१०-२०१४ को प्रकाशित।